इस्लाम-दर्शन

डॉ० गणेशदत्त सारस्वत्
एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत) पी-एच० डी०
प्रोफेसर हिन्दी-विभाग
आर० एम० पी० पोस्टग्रेज्युएट कॉलेज,
सीतापुर (उ० प्र०)

ISLAM DARSHAN (Hindi)
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट प्रकाशन न० -116

लेखक: डॉ० गणेशदत्त सारस्वत्

प्रकाशक: मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025
दूरभाष : 26971652, 26954341
फैक्स : 26947858
E-mail : mmipublishers@gmail.com
Website: www.mmipublishers.net

पृष्ठ : 124
संस्करण : मई 2011 ई०
संख्या : 1100
मूल्य : **45.00**

मुद्रक : राहील नसीम प्रिन्टिंग प्रेस, नई दिल्ली-2

विषय सूची

लेखक-परिचय

स्वभाव से एकान्तप्रिय, हृदय से भावुक, विचारों से उदार तथा वृत्ति से अध्यापक डॉ० गणेशदत्त सारस्वत का जन्म 10 सितम्बर 1936 ई० को बिसवाँ (सीतापुर) उ० प्र० में हुआ। साहित्यिक वातावरण आपको उत्तराधिकार में मिला। आपके पिता पं० उमादत्त सारस्वत "दत्त" हिन्दी-जगत के जाने-माने श्रेष्ठ कवि, व्यंग्य-लेखक तथा साहित्यकार हैं। उन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखीं।

डॉ० गणेशदत्त सारस्वत ने लखनऊ-विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा 1955 ई० में ससम्मान उत्तीर्ण की। 1957 ई० में तिलकधारी प्रशिक्षण महाविद्यालय, जौनपुर से एल० टी० की परीक्षा पास की। तदुपरान्त आगरा-विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम० ए० करने के बाद उसी विश्वविद्यालय से 1967 ई० में पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपका शोध विषय था "सीतापुर, जनपद के कवि : व्यक्तित्व एवं कृतित्व" शोध की दृष्टि से प्रस्तुत प्रबन्ध महत्वपूर्ण है।

अब तक डॉ० सारस्वत ने कई पुस्तकें लिखी हैं। 'वाणी' तथा 'आरती के फूल' उनके काव्य संग्रह हैं। इन संग्रहों की सभी रचनाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। अन्य रचनाओं में "द्विज बलदेव—एक अध्ययन," "उपनिषद्-दर्शन" "सीतापुर जनपद के कवि," "अपराधी" (कहानी-संग्रह) तथा 'उद्धव शतक: विवेचनात्मक अध्ययन' प्रमुख हैं। 'उद्धव शतक' पर आपकी

विवेचना प्रत्यूष प्रकाशन, कानपुर से प्रकाशित हो चुकी है। 'इस्लाम-दर्शन' उनकी नवीनतम पुस्तक है, जिसमें विभिन्न धर्मों में अनुस्यूत एकता की ओर संकेत किया गया है। यदा-कदा गज़लें भी लिखते हैं। दर्शनशास्त्र आपका प्रिय विषय है। आपकी रचनाओं में प्रगति का सौष्ठवपूर्ण सन्देश है। साथ ही, नवनिर्माण की आकांक्षा भी स्पन्दित है। आपने 'बिसवाँ के कवि' 'मधुसञ्चय' तथा 'रूहेसुख़न'—इन तीन पुस्तकों का सम्पादन किया है। 'मधुसंचय' में सीतापुर जनपद के प्राचीन कवियों के छन्द संकलित हैं। 'रूहेसुख़न' में विभिन्न विषयों पर विभिन्न उर्दू कवियों के अशआर संग्रहीत हैं।

डॉ० सारस्वत इस समय आर० एम० पी० स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीतापुर में हिन्दी विभाग में प्रध्यापक हैं।

— प्रकाशक

दो शब्द

पाठकों की सेवा में 'इस्लाम-दर्शन' का उपहार प्रस्तुत करते हुये हमें जिस हर्ष का अनुभव हो रहा है उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। 'इस्लाम-दर्शन' आदरणीय डॉ० गणेशदत्त सारस्वत जी का एक विचारात्मक अध्ययन एवं मधुर प्रयास है। सम्भवतः इस्लाम पर लिखी हुई किसी हिन्दू विद्वान की यह प्रथम पुस्तक है,जिसमें इस्लाम को उसके शुद्ध रूप में चित्रित किया गया है। इसके लिए डॉक्टर साहब को हम मुक्त हृदय से बधाई देते हैं। भविष्य में हमें उनसे बड़ी आशाएं हैं। ऐसे महानुभावों द्वारा भारत में धर्म और जनसेवा का कोई महान् कार्य सम्पन्न हो तो इसमें हमारे लिए आश्चर्य की कोई बात न होगी।

डॉक्टर साहब ने अपनी इस पुस्तक में इस्लाम की रूप-रेखा के साथ उसका भारतीय धर्मों के साथ एक तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त ज्ञानवर्धक एवं ध्यानाकर्षक है। योग्य लेखक ने अपनी इस पुस्तक द्वारा स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है कि इस्लाम अपनी शिक्षाओं और अपनी मौलिकता की दृष्टि से भारत के लिए कोई आयातित धर्म (Imported Religion) कदापि नहीं है। बल्कि अपनी व्यापकता के साथ हम भारतीयों के लिए यह एक विशुद्ध भारतीय धर्म है। 'व्यापकता' शब्द यहां हम न जान-बूझ कर प्रयोग किया है, इसलिए कि इस्लाम के प्रति-चेतना या अचेतन रूप में किसी को कोई ग़लतफ़हमी (भ्रम) न हो। यों तो भारत भी संकुचित दृष्टिकोण का समर्थक कभी नहीं रहा है। व्यापकता भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति की विशेषताओं में एक मौलिक विशेषता है।

इस अवसर पर हम यह निवेदन करना चाहेंगे कि इस्लाम की निर्धारित धारणाएं और शिक्षाएं भारत के लिए नवीन वस्तुएं नहीं हैं। इस्लाम ने हम भारतीयों को हमारे अपने ही प्राचीन एवं शुद्ध धर्म से अवगत कराया है और सच्चाई को निर्विकार रूप में हमारे समक्ष रखा है। ऐसी दशा में इस्लाम से विरोध और उसकी उपेक्षा स्वयं अपनी ही परम्परा और अपने ही धर्म एवं दर्शन का निरादर और निषेध करना है। इस्लाम ने हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण कार्य यह किया है कि उसने हमें स्पष्ट रूप से बता दिया कि हम भारतवासियों के पास धर्म, दर्शन आदि के नाम से जो कुछ है उसमें क्या चीज़ सत्य और अपनी है और क्या अपनी नहीं है। अर्थात् कौन-सी चीज़ अपने वास्तविक रूप में आज तक सुरक्षित है और कौन-सी चीज़ है, जो सुरक्षित न रहकर विकृत रूप में हम तक पहुँची है। इस प्रकार इस्लाम पिछले सच्चे धर्मों का रक्षक एवं पोषक है, उनका नाशक और निषेधक वह कदापि नहीं है। कुरआन में इस्लाम की इस हैसियत का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख हुआ है।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक पूरी दिलचस्पी के साथ पढ़ी जायेगी और यह पुस्तक धर्म और एकता के मार्ग में अत्यन्त सहायक सिद्ध होगी।

भवदीय

मु० फ़ारूक़ ख़ाँ

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

जमाअत इस्लामी (हिन्द)

दिल्ली

25 फरवरी, 1971 ई०

विद्वानों का अभिमत

डॉ० गणेशदत्त सारस्वत ने जब एक पत्र (कान्ति) में धारावाहिक रूप से प्रकाशित अपना 'इस्लाम-दर्शन' मुझे पढ़ने को दिया तब वह मुझे अनपेक्षित रूप से अच्छा लगा। पहले तो मुझे डर लगा कि जिस विषय को मैं बेकार बैठे हुए विद्वानों द्वारा बाल की खाल निकालने का खेल समझा करता था उसका अच्छा लगना मेरे जीवन के अपराह्न में आए हुए बुढ़ापे का लक्षण तो नहीं है? पर थोड़ा सोच-विचार करने पर वह धारणा ग़लत प्रमाणित हुई।

हमारा देश सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य से अनेक प्रकार की संस्कृतियों और धार्मिक विश्वासों का देश है। एक दूसरे से पर्याप्ति परिचय न होने के कारण हम थोथे आधारों पर एक दूसरे को बुरा समझते हैं। मेरी भी इसी प्रकार की कई ग़लत धारणाएं थीं। पर जब मैंने डॉ० सारस्वत की पुस्तक पढ़ी तब मेरी आंखें खुल गईं और मेरी समझ में आया कि हमारे देश के भिन्न-भिन्न धार्मिक विश्वासों, संस्कृतियों तथा विचार दर्शनों के बीच की खाई जितनी गहरी समझी जाती है, उतनी नहीं है। यही नहीं, भिन्न-भिन्न दर्शनों की मूलभूत एकता आश्चर्यजनक है।

डॉ० नवल बिहारी मिश्र
बी० एस-सी०, एम० बी० बी० एस०
सभापति,
'हिन्दी-सभा', सीतापुर (उ० प्र०)

आज अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है। ऐसी दशा में विभिन्न धर्मों

का तुलनात्मक अध्ययन सामाजिक समरसता की विवृद्धि के लिए आवश्यक है। ऐसी विचारधारा को, जिसके माध्यम से एक-दूसरे को समझा जा सके, जगत-विख्यात बनाने में प्रत्येक मानव का सहयोग अपेक्षित है। डॉ० गणेशदत्त सारस्वत ने अपनी इस पुस्तक में विभिन्न मतावलम्बियों की भावनाओं का इसी ध्येय से मूल्यांकन किया है। आपका प्रयास स्तुत्य है। सभी लोगों को, चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय के हों, 'अनेकत्व में एकत्व' तथा 'एकोहम् बहुस्याम्' के वास्तविक अर्थ इस पुस्तक के अध्ययन से स्पष्ट हो जाएंगे। मैं आशा करता हूँ सारस्वत जी की प्रस्तुत पुस्तक का साहित्य जगत समुचित आदर करेगा।

श्यामसुन्दर
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,
गांधी फ़ैज़आम डिग्री कॉलेज,
शाहजहाँपुर (उ० प्र०)

वक्तव्य

'इस्लाम-दर्शन' में इस्लाम के धार्मिक दृष्टिकोणों व सामाजिक संस्थानों और उसके प्रभावों इत्यादि पर व्यापक दृष्टि डाली गई है। यह पुस्तक विभिन्न सम्प्रदायों की रूढ़िवादी धार्मिकता द्वारा उत्पन्न उन भ्रमों व शंकाओं का निवारण भी करती है जो सामाजिक, राजनीतिक एवं जातीय विषमताओं का रूप धारणकर मानव-एकता में बाधक सिद्ध हो रही हैं। उदाहरण स्वरूप पुस्तक इस भ्रम का निवारण करती है कि 'काफ़िर' का अर्थ 'धर्म' का विरोधी नहीं, बल्कि काफ़िर से अभिप्रेत है 'नास्तिक'। इसी प्रकार के और भी बहुत से शब्द हैं, जिनके विभिन्न धार्मिक एवं राजनीतिक व्यक्तित्वों द्वारा विभिन्न अर्थ किए गए हैं, जिनसे बड़े भ्रम फैले हैं, यह पुस्तक उन भ्रमों का निवारण करके धर्म के मूल तत्वों का अवलोकन कराती है।

के० सी० बन्सल
प्राचार्य, आर० एम० पी० कॉलेज
सीतापुर (उ० प्र०)

(विद्वानों के अभिमत और वक्तव्य इस पुस्तक के प्रथम संस्करण से उद्धृत हैं)

अपनी बात

किन क्षणों में विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन की अभिलाषा ने 'जिज्ञासा' का रूप धारण किया, आज उनका आकलन असम्भव-सा प्रतीत होता है, किन्तु इस असम्भाव्य के उपरान्त भी घर का वह वातावरण सहज ही स्मरण हो आता है जो अब भी मुझे अध्ययन के 'उपाधिधर्म' के रूप में ही स्वीकार है। घर में होने वाली, किसी न किसी रूप में धार्मिक चर्चा ने धर्म-साहित्य के प्रति मेरी आस्था को दिन प्रतिदिन दृढ़ता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप काव्य में ब्रह्ममय सहोदर रस के आस्वादन के साथ-साथ रस का वह आस्वाद भी प्राप्त होता रहा, जिसका संकेत 'रसोवैसः' में किया गया है।

गतवर्ष मैंने उपनिषदों का अध्ययन किया और भारतीय दर्शन की प्रमुख आधारपीठिका उपनिषद् विद्या से सम्बन्धित कुछ निबन्ध भी लिखे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इन निबन्धों का प्रकाशन हुआ। 'उपनिषद्-दर्शन' इन निबन्धों का संग्रह है। प्रस्तुत 'इस्लाम-दर्शन' उसी अध्ययन श्रृंखला की दूसरी कड़ी है। इस ग्रन्थ में छः निबन्ध हैं। ईश्वर, सृष्टि, साधना और आख़िरत, इन चार दार्शनिक विषयों के अतिरिक्त 'क़ुरआन में नारी की स्थिति' तथा 'राजनीति एवं समाज—व्यवहार' पर भी विहंगम दृष्टि है। जहाँ तक सम्भव हो सका है, बिना किसी पूर्वाग्रह के तटस्थ रहते हुए उक्त विषयों का क़ुरआन सम्मत रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। अन्य धार्मिक विचारधाराओं का भी यथास्थान उल्लेख इस आशय से किया गया है कि इससे एक ओर जहाँ अध्येता को

तुलनात्मक दृष्टि से विषयवस्तु को देखने का अवसर सुलभ होगा, वहाँ दूसरी ओर विषय भी अधिक स्पष्ट और सुग्राह्य हो सकेगा। पुस्तक कैसी बन पड़ी है, इसका निर्णय तो विज्ञपाठक ही करेंगे, हाँ इसी बहाने कुरआन का मैंने जो अध्ययन किया उससे मुझे काफ़ी सन्तोष है।

आदरणीय श्री प्रो० श्यामसुन्दर (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जी० एफ० कॉलेज, शाहजहाँपुर) के प्रति आभार प्रदर्शन करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने ग्रन्थ का 'आमुख' लिखकर उसके गौरव को बढ़ाया है। आचार्य श्री भिक्खु मोग्गलायन का भी मैं अनुगृहीत हूँ जिनके सत्परामर्शों का ही परिणाम प्रस्तुत पुस्तक है।

आदरणीय फ़ज़लुर्रहमान खाँ साहब को भी इस क्रम में विस्मृत नहीं किया जा सकता है—जिनकी धर्मविषयक वार्ताओं ने मेरे दृष्टिकोण को उन्मुक्तता प्रदान की और 'अपनी बात' के अन्त में यदि नितान्त अपनी बात को न कह सका हो यह अपूर्ण ही मानी जाएगी। अपनी सहधर्मिणी का स्नेह, आदर, स्थैर्य और न जाने किन-किन विभिन्न (और शायद विचित्र भी) भावों से सम्पृक्त सहयोग तो इस ग्रन्थ की आधार शिला ही है जिसकी स्थिति 'अन्वयव्यतिरेक रूप' से बनी हुई है। 'और अब तो बस—

'आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्'

28 मार्च, 1969 ई० —गणेशदत्त सारस्वत

ईश्वर

इस्लाम-धर्म के आधारात्मक तथा मौलिक विश्वासों में से एक है– ईश्वर के अस्तित्व तथा उसके गुणों में विश्वास। ईश्वर 'ईशा' शब्द से बना है। जिसका अर्थ है 'शासन करने वाला' सबका ईशन (शासन) करने वाला परमेश्वर परमात्मा है। 'अल्लाह' शब्द, जो वास्तव में 'अल-इलाह' था, इसी का पर्यायवाची है। 'अल-इलाह' में 'अल' अंग्रेज़ी के 'दि' (The) की भाँति अव्यय है। जातिवाचक से व्यक्तिवाचक संज्ञा बनाने के लिए इसका प्रयोग किया गया है। 'इलाह' पूज्य के अर्थ में आता है। इस प्रकार अल्लाह से अभिप्राय उस विशिष्ट सत्ता से है, जो सर्वथा इलाह (पूज्य) है, सर्वोच्च तथा रहस्यमय है एवं जो हमारी कल्पना से परे है। वेद में भी 'ईल्य' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है। ऋग्वेद का एक मन्त्र है–

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति।   – 1/1/2

अर्थात् ''वही ज्ञानस्वरूप, सब पदार्थों का प्रकाशक परमेश्वर पूर्व के, शास्त्रों के विज्ञ-विद्वानों, मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषियों, विद्वान अध्यापकों और तर्कों के द्वारा तथा नए अर्थात् वेदार्थों के पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों के द्वारा स्तुति, वन्दना, मनन तथा अन्वेषण करने योग्य है। वह ही सूर्य के समान ऋतुओं को, आत्मा के समान प्राणों को, भोक्ता के समान भोगों को, आचार्य के समान विद्यादि दिव्य गुणों को इस जगत में धारण करता एवं सबको प्राप्त कराता है।''
'कुरआन' में अल्लाह के लिए 'बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम,' 'अरहमर्राहेमीन' तथा 'वत्तव्वाबुर्रहीम' आदि उक्तियों में रहमान

तथा रहीम शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। अल्लाह अपनी कृपाशीलता के कारण 'रहमान' है तथा दयावान होने के कारण 'रहीम'। उसे सारे संसार का 'रब' अर्थात् पालनकर्ता बतलाया गया है (1:1-2)।

इस्लाम-धर्म ईश्वर की एकता में विश्वास रखता है। इसीलिए ही, 'कुरआन' में ईश्वर के एक होने के सम्बन्ध में विभिन्न तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। इन तर्कों के माध्यम से इस धारणा की पुष्टि की गई है कि संसार को बनाने वाली जो शक्ति है, वह अद्वितीय है, निरपेक्ष है। अल्लाह के अतिरिक्त किसी और के खुदा के होने की बात ही हास्यास्पद है। 'अल-इख़्लास' सूर : में इसी बात को—'ख़ालिस तौहीद' (एकेश्वरवाद) को बड़े अच्छे ढंग से समझाया गया है। जिसका भाव यह है: ''कहो, अल्लाह जिसके हम उपासक हैं, 'यकता' अर्थात् अकेला और निराला है। उसका कोई भी शरीक नहीं है। प्रत्येक दृष्टि से वह अनुपम है। वह एक ऐसी सत्ता है, जिसमें बहुत से अंशों का योग नहीं है।'' एक अन्य स्थान पर यह बतलाया गया है कि ''तुम्हारा इलाह (पूज्य) अकेला इलाह है, उस दयावान और कृपाशील के अलावा कोई भी इलाह नहीं है।'' (2:163, 4:87) वह (तुम्हारा इलाह) निश्चय ही अकेला है (37:4), वह महिमामय है; अकेला है और प्रभुत्वशाली है (39:6), उसी की ही इबादत करो (39:66), 'मुश्रिकों' (अनेकेश्वरवादियों) को अल्लाह 'तब तक क्षमा नहीं करता है? जब तक कि वे 'शिर्क' को त्यागकर 'तौहीद' को नहीं अपना लेते हैं आदि अनेकानेक उक्तियाँ ईश्वर की एकता तथा अविभाज्यता पर बल देती हैं।

इस प्रकार की, 'लाइलाह इल-लल्लाह'—इलाह कोई नहीं सिर्फ़ अल्लाह के, विषयक उक्तियाँ, जिनमें 'तौहीद' को ही सत्य बतलाया गया है तथा केवल अल्लाह की इबादत करने के निर्देश के

साथ ही किसी और को शरीक न ठहराने की संम्तुति की गई है, 'कुरआन शरीफ़' में बहुतायत से मिल जाएंगी। इस्लाम-धर्म की इस विचारधारा का ऋग्वेद के 'य एक इत् तमुष्टिहि, (6/45/16) अर्थात् वह एक है, उसी की पूजा करो तथा 'मा चिदन्यद विशसत' (८/1/1), अर्थात् किसी दूसरे को न पूजो आदि विभिन्न सूक्तों में समर्थन है। अथर्ववेद के 'प्रजापते न त्वदेतानि अन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव (7/8/3) अर्थात् हे प्रजा के पालक परमेश्वर! तेरे सिवा कोई भी इन उत्पन्न पदार्थों का मालिक नहीं है— आदि मन्त्रों में भी ईश्वर की एकता की संस्तुति है। इसी बात को छान्दोग्य उपनिषद् में इस रूप में कहा गया है— 'ओमित्येतद क्षरमुद्गीथमुपासते' (मन्त्र-1) अर्थात् 'ओउम्' जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करने योग्य है, अन्य की नहीं।

भगवान शंकराचार्य के अद्वैतवाद में 'एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति' की जो व्याख्या है, वह इस्लाम-धर्म की उक्त मान्यता से भिन्न नहीं है। किन्तु, फिर 'जीवोब्रह्मै वनापरः' द्वारा शंकराचार्य इस्लाम के इस एकेश्वरवाद से अलग हट जाते हैं। ईसाई-धर्म में भी इस मान्यता के दर्शन होते हैं। 'बाइबिल' में, विभिन्न प्रसंगों में ईश्वर की अद्वैतता स्वीकृत है। 'यिहूदा की पत्री' में स्पष्ट रूप से उसे (ईश्वर को) 'अद्वैत स्वामी' तथा 'अद्वैत बुद्धिमान' की संज्ञा दी गई है। (4:25)। 'योहनरचित सुसमाचार' में उसे 'अद्वैत सत्य ईश्वर' (यौ० प० 17 आ० 3) बतलाया गया है।

इस्लाम-धर्म में ईश्वर को अनेक विशेषताओं से युक्त माना गया है। उसे स्रष्टा, द्रष्टा, पोषक तथा संहर्त्ता कहा गया है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—इन तीनों देवताओं के गुणों का उसमें समाहार है। भारतीय दर्शन की विचारधारा भी इसके साथ

चलती हुई प्रतीत होती है।[1] 'कुरआन शरीफ़' की अनेक आयतों में स्पष्ट उल्लेख है कि उसी ने ज़मीन और आसमान पैदा किए हैं। (2 : 117, 20 :4, 25 :59) सजीव तथा चिरस्थायी है। (3 :2), वह बीज तथा गुठली का फोड़ने वाला है, प्रभात्त को फाड़ निकालने वाला है (6:96-97), जीवन-मरण का स्वामी है (7:158, 10:56), आंख, कान और दिल का देने वाला, जिलाने वाला तथा मारने वाला है (23:78-80), वही उत्तम रोज़ी देता है (22:58, 62:11), वही हंसाता है और रुलाता है, मारता है और जिलाता है (53:43-44) तथा इस प्रकार वही सर्वोत्तम संरक्षक, मित्र और सहायक है (22:78)। इतना ही नहीं, पूर्ण सृष्टि के 'रब' होने के नाते वह संसार की प्रत्येक वस्तु का नियन्ता है (1:1), सम्पूर्ण जगत उसके वश में है। 'अथर्ववेद' में ईश्वर के नियन्तत्व के इस गुण का इस रूप में विवेचन है–

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्नसर्व प्रतिष्ठितम्।।

— अथर्व०,काण्ड 11, सूक्त 4, मन्त्र 1

अर्थात् जैसे प्राण के वश सब शरीर और इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे ही परमेश्वर के वश में सब जगत रहता है।

ईसाई मतावलम्बी भी ईश्वर को जगत का रचयिता, एक ही लोहू से मनुष्यों की सब जातियों को सारी पृथ्वी पर बसने के लिए बनाने वाला, भूत वर्तमान तथा भविष्य का प्रणेता, 'अलफ़ा' और 'ओमिगा'–आदि तथा अन्त का तटस्थ प्रेक्षक मानते हैं। (प्रेरितों की क्रिया, 17वाँ पर्व, 24-26; योहन का प्रकाशित वाक्य, 1 ला पर्व)।

1. रजोजुषे जन्मनि सत्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे।
अजाम सर्गस्थिति नाश हेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः।।

--कादम्बरी (वाणभट्ट कृत) मंगलाचरण

'बाइबिल' में एक स्थल पर उसकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि 'हे परमेश्वर, हमारे ईश्वर तू महिमा, आदर और सामर्थ्य लेने योग्य है क्योंकि तूने सब वस्तुएं सृजीं और तेरी इच्छा के कारण वे हुईं और सृजी गईं।' (योहन का प्रकाशित वाक्य, चौथा पर्व, 11)

गुरु नानक ने भी ईश्वर को 'कर्त्ता पुरुष' की संज्ञा दी है, भय और वैर रहित बतलाया है तथा उसके शाश्वत स्वरूप को स्वीकार किया है—"ओ ,सत्यनाम कर्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त अजोनि सहभं गुरु प्रसाद जब आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, होसी भी सच" (जपुजी पौड़ी, 1)।

'क़ुरआन' में अल्लाह के अन्य दिव्य गुणों के साथ ही उसकी क्षमाशीलता पर भी अत्यधिक बल दिया गया है। इसीलिए जो 'तौबा' (अर्थात् पश्चात्ताप, क्षमायाचना) अर्थात् गुनाह और अनुचित कर्मों को भविष्य में न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेता है तथा उसकी भक्ति और आज्ञापालन के काम पर लग जाता है, ईश्वर उसे क्षमा कर देता है (20:82)। बन्दों की तौबा तुरन्त स्वीकार कर लेना उसका स्वभाव है (42:25)। इसीलिए ही, उसके सम्बन्ध में बार-बार कहा गया है "अलयूहे इन्नहु हो वत्तव्वाबुर्रहीम" अर्थात् निस्संदेह वह बड़ा क्षमा करने वाला और उदार है। इससे बढ़कर उसकी उदारता का और क्या प्रमाण हो सकता है कि वह लोगों के अत्याचार पर उन्हें एक निश्चित समय तक मुहलत देता है (16:61)। शायद स्वयं से ही प्राणी सचेत हो जाए। वैसे, वह किसी के काम से बे-ख़बर नहीं है (2:77), जो भी, जो कुछ भी कार्य करता है, अल्लाह उसे देख रहा है (2:96), इतना ही नहीं, उसे लोगों के दिलों का हाल तक मालूम है (2:235)। ईश्वर की सर्वविज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, दयालुता, न्याय तत्परता तथा उसके अन्तर्यामी स्वरूप का भारतीय न्यायदर्शन में इस प्रकार विवेचन किया गया है—

ईश्वरोऽयं निराकारः सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्।
अनादिरविकारी चानन्त सर्वगतो विभुः।।
सच्चिदानन्दरूपोऽपि दयालुर्न्यायतत्पर :।
सर्गस्थितौ लये हेतुः नित्यतृप्तो निराशयः ।।

— न्यायकुसुमांजलि, परिशिष्ट

अर्थात् ईश्वर निराकार, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। वह अनादि अविकारी, अनन्त और सर्वव्यापक शक्ति है। वह सच्चिदानंद (सत्‌चित और आनन्द से युक्त) स्वरूप वाला दयालुत और न्याय पर तत्पर रहता है। वह समस्त जगत् में स्थित चीज़ों क पोषण प्रदान करता है।

गीता में भी उसे 'वेत्ता' अर्थात् सब कुछ जानने वाला कह गया है। (अध्याय 11, श्लोक 38)। एक अन्य स्थान पर 'ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुनः तिष्ठति' कहकर परमेश्वर की निर्बा गति को स्वीकार किया गया है। उसकी यह निर्बाध गति ही उस अन्तर्यामी स्वरूप का परिचायक है।

'कुरआन' में, बन्दों पर अल्लाह के उपकारों का विश विवेचन है। इस वर्णन के द्वारा बन्दे के हृदय में ईश्वर के प्र आस्था एवं निष्ठा को दृढ़ करने का प्रयत्न किया गया है। इस क्रम बार-बार कहा गया है कि अल्लाह ने ही आसमान से पानी बरसाय है, मुर्दा ज़मीन को ज़िन्दा किया है (16:65), खजूर, अंगूर औ दूसरे मेवे पैदा किए हैं तथा मधुमक्खी के पेट से शहद निकाला (16:67-69), तुमको मां के पेट से पैदा किया है, रहने को मका दिए हैं तथा जानवरों के ऊन तथा बाल से वस्त्र बनाने की प्रेरणा है। जिससे शर्मगाहों (गुप्तांगों) को छिपाया जा सकता है। (16:7 81; 7:26), दिल की बीमारियों के इलाज के रूप में उसने अप 'हिदायत' भेजी है। (10:57)। उसी ने ही ईमानवालों के दि

पर तसल्ली उतारी है (48:4)। नास्तिकों को समझाने के लिए, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए 'कुरआन शरीफ़' में अनेक तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। मनुष्य के चारों ओर और स्वयं उसके व्यक्तित्व में ईश्वर के अस्तित्व के चिन्ह फैले हुए हैं। 'कुरआन' उनको ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण के रूप में उपस्थित करता है। एक आयत का अर्थ है "लोगों के लिए (हमारी अपूर्व शक्तियों का) एक चिह्न रात्रि है, हम उससे दिन को खींच लेते हैं,सो लोग अन्धकार में रह जाते हैं और (हमारी शक्ति का एक प्रमाण) सूर्य भी है जो अपने नियत स्थान पर चलता रहता है, यह सब उसी प्रभुत्वशाली और सर्वज्ञ की निश्चित व्यवस्था है और (एक चिन्ह) चन्द्रमा है, हमने उसके लिए स्थान नियत कर दिए हैं यहाँ तक कि वह (अपने स्थानों पर चलता हुआ) खजूर की पुरानी टहनी के समान हो जाता है, (परन्तु) न सूर्य के लिए यह उचित होता है कि वह चन्द्रमा को जा पकड़े और न रात ही के वश में होता है कि वह दिन से आगे जाए, यह सब नक्षत्र अपनी-अपनी कक्षा में तैर रहे हैं।" (36:37-40) आदि कथनों में ईश्वर के अस्तित्व का समुचित प्रमाण है। पवित्र कुरआन में अन्य स्थान पर कहा गया है–

> **"केयफ़ तकफ़ुरून बिल्लाहि व कुन्तुम् अम्वातन फ़ अह्याकुम् सुम्म युमीतुकुम् सुम्म युह्यीकुम सुम्म इलैहि तुर्जऊन।"**

अर्थात्, तुम कैसे नहीं मानते हो अल्लाह को (देखो) जबकि तुम मृत थे उसने तुम्हें जीवन दिया, तुम फिर मरोगे वह फिर तुमको जीवन प्रदान करेगा अन्त को तुम उसी की ओर लौटाए जाओगे (2:28)। एक अन्य तर्क है 'क्या इन्होंने (काफ़िरों ने) अपने ऊपर पक्षियों को पंख फैलाए हुए और समेटते हुए नहीं देखा है? उन्हें रहमान (कृपाशील ईश्वर) ही थामे रहता है। निस्संदेह वह हर एक

चीज़ को देखता है।' (67:19) वास्तव में, यह अल्लाह की दयालुता ही है, जिससे चिड़ियां हवा में उड़ती तथा मछलियां पानी में तैरती हैं। खेद है, फिर भी अनीश्वरवादियों की आंखें नहीं खुलती हैं। इसी प्रकार एक और तर्क प्रस्तुत किया गया है। इसमें कहा गया है 'कह दो: क्या तुमने सोचा यदि तुम्हारा यह पानी ज़मीन में उतर जाए, तो फिर कौन लाकर देगा निथरा हुआ प्रवाहित पानी? (67:30), सच तो यह है कि एक क्षण के लिए भी अल्लाह की कृपा-दृष्टि के बिना जीवित नहीं रहा जा सकता है। ऐसी दशा में, उससे विमुख रहना अक्षम्य अपराध है। इस कोटि के व्यक्तियों को वह कठोर से कठोर दण्ड देने में भी संकोच नहीं करता है। कुरआन में है 'रब' के साथ 'कुफ्र' (अकृतज्ञता) करने वाले ये लोग, जिनकी गरदनों में 'तौक़' पड़े हुए हैं, अर्थात् गुमराही की बेड़ियों में जो जकड़े हुए हैं, आग (दोज़ख़ की आग) में जाने वाले हैं, जहाँ ये सदा रहेंगे (13:5)। इस प्रकार नाना उक्तियों के माध्यम से व्यक्ति को ईश्वर-भक्ति का आदेश दिया गया है तथा गुमराही से बचने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है।

'कुरआन' में ईश्वर के वास्तविक शक्ति और दयालुता को खोल-खोलकर बयान किया गया है। 'सूरः अन-नूर' की 35वीं आयत में उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि वह 'नूरून अलानूर' तथा 'नूरुस समा वल अर्ज़' अर्थात् रोशनी पर रोशनी है। गीता में भी ईश्वर को शशि तथा सूर्य का प्रकाश स्रोत 'प्रभाऽस्मि शशि सूर्ययोः (7-8) तथा 'ज्योतिषामपि तज्ज्योति (13-18) ज्योतियों का भी ज्योति माना गया है। 'मुण्डकोपनिषद्' में उस ब्रह्म को 'आविः संनिहितं गुहाचरं नाम' अर्थात् प्रकाश स्वरूप सबके हृदय में स्थित तथा गुहाचर नाम वाला कहा गया है। 'छांदोग्योपनिषद्' में उसके लिए 'भामनी' शब्द प्रयुक्त है, जिसका अर्थ है प्रकाशरूप—एष उ एव भामनीरेषहि सर्वेषु लोकेषु भाति (अ० 4, खण्ड 15, मन्त्र संख्या

4)—यह पुरुष निस्संदेह ही प्रकाशरूप है, क्योंकि यह पुरुष सब लोकों में आदित्य रूप से प्रकाशता है। यजुर्वेद में उसे सूर्यादि तेज:स्वरूप सब पदार्थों का गर्भ (उत्पत्तिस्थल) होने के कारण 'हिरण्यगर्भ' कहा गया है (यजुर्वेद, अध्याय 13, मन्त्र 4)। कुरआन कहता है : अल्लाह ईमान लाने वाले लोगों को अंधेरे से उजाले में ले जाता है (सूर : 2:257)। इसीलिए हज़रत मुहम्मद साहब (सल्ल०) की 'दुआ' है, "ऐ अल्लाह! मुझे रोशनी दे।" उपनिषदों में भी जगह-जगह पर 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की प्रार्थना की गई है। गीता में भी अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को तत्त्व-ज्ञान के दीपक द्वारा नष्ट करने की प्रार्थना है (10-11)। इसके अतिरिक्त 'कुरआन' में ईश्वर के लिए 'रब्बुल आलमीन' (सब दुनियाओं का मालिक), 'हुवल हक्क'(वही सत्य है) तथा 'इन्नहू बेकुल्ले शैइम्मुहीत' (सब चीज़ों को घेरे हुए) आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन शब्दों में 'ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या' (शंकराचार्य) तथा 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत' (ईशावास्योपनिषद्, मन्त्र 1) आदि सूक्तों का गूढ़ार्थ ध्वनित एवं व्यंजित है। इसी प्रकार उसे अचिन्त्य तथा बुद्धि से परे मानते हुए कुरआन में कहा गया है 'आदमी की निगाह उसे समझ नहीं सकती है' (6:104)। उसकी सर्वव्यापकता तथा कण-कण में रमे होने की बात इस रूप में प्रस्तुत की गई है— 'जिधर को भी तुम मुड़ो उधर ही अल्लाह का रुख़ है' (2:115)।

गीता के निम्न उद्धरण इस भाव से भिन्न नहीं है—

अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च।
अहमेवाक्षयः कालोधाताहं विश्वतोमुखम्।।

—10/33

अर्थात् मैं अक्षरों में आकार हूँ और समासों में द्वन्द्व समास हूँ तथा मैं ही अविनाशीकाल और सृष्टाओं में सब दिशाओं में

मुखवाला ब्रह्मा हूँ।

संक्षेप में, ऋग्वेद के निम्नलिखित श्लोक में ईश्वर का जो वर्णन है, उसमें इन समस्त गुणों का समाहार है–

युञ्जन्ति ब्रह्म मरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ।।2/6/1।।

अर्थात् विद्वान योगी जन सबको नियम-व्यवस्था में बांधने वाले महान्, सर्वाश्रय दोषरहित,अहिंसक, तेजस्वी, समस्त स्थावर, अचेतन प्राकृतिक संसार में व्यापक परमेश्वर का संमाहित चित्त होकर ध्यान करते हैं, उसका योगाभ्यास से साक्षात्कार करते हैं। वे ही ज्ञानमय प्रकाश और परमज्योतिर्मय तप से तेजस्वी होकर प्रकाशस्वरूप परमेश्वर या मोक्ष में प्रकाशित होते हैं, विराजते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'कुरआन' में ईश्वर विषयक अनेक उल्लेख हैं। ये उल्लेख कहीं तो उसकी सत्ता एवं गुणों को व्यक्त करते हैं, कहीं उसकी दयालुता, कृपाशीलता तथा शक्तिमत्ता का परिचय देते हैं, कहीं नास्तिक विचारधारा का खण्डन करते हैं और कहीं ईश्वर-भक्ति, सदाचरण तथा सर्वस्वार्पण की प्रेरणा देते हैं।

आख़िरत

इस्लाम-धर्म 'आख़िरत' में विश्वास रखता है। आख़िरत का अर्थ परलोक है। 'कुरआन' में पारलौकिक जीवन पर आस्था रखने की स्थान-स्थान पर संस्तुति है। इस्लाम-धर्म के अनुसार, वर्तमान लोक की आयु निश्चित है। इस सीमित अवधि के समाप्त होने के पश्चात् एक समय ऐसा आएगा जब इस सृष्टि की सम्पूर्ण व्यवस्था बिगड़ जाएगी। उस समय ईश्वर एक नए लोक का निर्माण करेगा, जिसके नियम इस सृष्टि से सर्वथा भिन्न होंगे। उस लोक में रहस्य-रहस्य न रह जाएगा, अप्रत्यक्ष प्रत्यक्ष बनकर बोल उठेगा तथा वास्तविकता स्वतः ही प्रकट हो जाएगी। वहाँ अल्लाह सारे मनुष्यों को, जो आदि से अन्त तक हुए होंगे, चाहे वे किसी देश अथवा स्थान में मरे हों, उनका धर्म-कर्म चाहे जो भी रहा हो, पुनः जीवित कर एकत्र करेगा तथा उनके शुभाशुभ कर्मों के सम्बन्ध में निर्णय देगा। जिन्होंने शुभ कर्म किए हैं, जो अल्लाह की आज्ञाओं का पालन करते रहे हैं उन्हें 'जन्नत' तथा अशुभ कर्म करने वालों को 'दोज़ख़' में डाल दिया जाएगा। 'कुरआन' में इस दिन के लिए 'क़ियामत' (प्रलय) तथा 'हश्र जज़ा' (न्याय का दिन) आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।

मनुष्य की मृत्यु अनिवार्य चीज़ है। इस्लाम के अनुसार प्रत्येक जीव को मृत्यु का स्वाद चखना है। (3:185; 21:35)। कोई कहीं भी क्यों न रहे मौत आकर ही रहेगी। बड़े-बड़े किले भी उसे नहीं बचा सकते हैं (4:78), अन्तिम समय के आ जाने पर प्राण खींच लेने वाले फ़रिश्ते कोताही नहीं करते (6:61), 'कुफ़्र' करने वाले को,

अल्लाह जिस रास्ते को पसन्द नहीं करता उस पर चलने वालों को, अल्लाह के प्रति उदण्डता अपनाने वालों को वे अज़ाब (यातना) देते हैं (8:50, 47:27-28) तथा आज्ञाकारियों की जान निकालते समय उनपर सलामतियाँ भेजते हैं। (16:32)। मरने के बाद आत्माएं जिस लोक में रखी जाती हैं, वहां से वे इस दुनिया में लौटकर नहीं आ सकती हैं।

इतना ही नहीं, मरने के बाद से लेकर क़ियामत तक काफ़िरों को सुबह-शाम दोज़ख़ दिखाया जाता है—

"आग है; जिसके सामने वे प्रातःकाल और सन्ध्या समय पेश किए जाते हैं और जिस दिन वह घड़ी (अर्थात् क़ियामत) क़ायम होगी (कहा जाएगा) फ़िरऔन के लोगों को सख़्त अज़ाब में दाख़िल करो। जब वे आग में परस्पर झगड़ेंगे तो निर्बल लोग, उन लोगों से जो बड़े बने हुए थे, कहेंगे हम तो तुम्हारे पीछे चलने वाले थे, तो क्या तुम हम पर से आग का कोई हिस्सा हटा सकते हो? जो लोग दुनिया में बड़े बने हुए थे वे कहेंगे, हम सब ही इस आग में पड़े हुए हैं। निश्चय ही अल्लाह (अपने) बन्दों के बीच फ़ैसला कर चुका (40:46-48)।"

इस उल्लेख से यह विदित होता है कि इस्लाम-धर्म के अनुसार, मृत्यु के पश्चात् मनुष्य बिल्कुल विलुप्त नहीं हो जाता। केवल उससे उसका वर्तमान शरीर छिन जाता है। उसका व्यक्तित्व मृत्यु के बाद भी शेष रहता है। सुख-दुःख की अनुभूति भी उसे यथापूर्व होती रहती है। साथ ही, यह भी ज्ञात होता है कि उस लोक में कोई किसी के काम नहीं आ सकता है। लोगों को पथभ्रष्ट करने वाले तथा स्वयं गुमराह होने वाले— इनमें से कोई भी अल्लाह के अज़ाब से नहीं बच सकता है। 'छान्दोग्योपनिषद्' में नाड़ियों के ऊर्ध्वगमन को मृत्यु माना गया है—

अथ यत्रैतद–स्माच्छ रीरादुत्क्रामत्यथै तैरेव रश्मिभिरुर्ध्वयाक्रमयते स अ मिति वा होद्वमीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्।

– अध्याय 8, खण्ड 6, मंत्र संख्या 5

अर्थात् "यह प्राण जब इस शरीर में से निकलता है, उस समय यह किरणों के द्वारा ही ऊपर हो जाता है, हृदय में विद्यमान ब्रह्म की उपासना करने वाला वह उपासक 'ओउम् कहकर आत्मा का ध्यान करता हुआ स्वस्थ अवस्थायुक्त-सा ऊपर को चला जाता है (और यदि उपासना नहीं की होती है तो इससे भिन्न गति होती है।) वह उपासक शरीर में से निकलकर जितने समय में मन को फेंका जाए,उतने ही समय में आदित्यमण्डल में जा पहुँचता है, आदित्य ही ब्रह्मलोक का प्रसिद्ध द्वार है, उस द्वार से उपासक ब्रह्मलोक में जाता है। अत: वह उपासक को ब्रह्मलोक प्राप्त कराने वाला है और उपासना न करने वाला अविद्वान् सूर्य के तेज से शरीर में ही रुक जाने पर सुषुम्ना नाड़ी से न निकलकर दूसरी नाड़ियों से निकलता है, इस कारण आदित्य उनका रोधक होता है। मरणोत्तरकाल में जीव की गति 'कठोपनिषद्' में इस प्रकार वर्णित है–

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।।

– वल्ली 2, मन्त्र संख्या 7

अर्थात्,अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही देहधारी तो शरीर धारण करने के लिए किसी योनि को प्राप्त होते और कितने ही स्थावर-भाव को प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि जिसने जैसा कर्म किया है उसके अनुरूप ही उसे फल प्राप्त होता है। 'यथा प्रज्ञं

हि संभवा:' के द्वारा भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। इसीलिए 'कुरआन' की प्राय: सभी आयतों में सत्कर्म पर बल दिया गया है। वास्तव में, अल्लाह की राह में मरने वाले सदैव ज़िन्दा हैं, 'रब' से उन्हें बराबर रोज़ी मिल रही है। (3:169)। 'बाइबिल' में इसी बात को इस रूप में कहा गया है—

"हे भाइयो! मैं नहीं चाहता हूँ कि तुम उनके विषय में जो सोये हुए हैं अनजान रहो। ऐसा न हो कि तुम औरों के समान जिन्हें आशा नहीं है शोक करो,क्योंकि जो हम विश्वास करते हैं कि यीशु मरा और जी उठा तो वैसे ही ईश्वर उन्हें भी जो यीशु में सोये हैं, उसके संग लायेगा। क्योंकि हम प्रभु के वचन के अनुसार तुमसे यह कहते हैं कि हम जो जीवित हैं, और प्रभु के आने तक बचे रहेंगे तो सोए हुओं से कभी आगे न बढ़ेंगे। क्योंकि प्रभु आप ही ऊँचे शब्द सहित प्रधान खीष्टा के शब्द सहित और ईश्वर की तुरही सहित स्वर्ग से उतरेगा और जो खीष्ट में मूए हैं सोई पहले उठेंगे और हम जो जीवित हैं और बच जाते हैं एक संग उनके साथ प्रभु से मिलने को मेघों में आकाश पर उठा लिए जाएंगे और इस रीति से हम सदा प्रभु के संग रहेंगे।"

-- थिस्सलुनीकियों को, 4 : 13-18

'कुरआन' में क़ियामत का काफ़ी विस्तार के साथ वर्णन है। इस वर्णन के अनुसार क़ियामत अवश्यंभावी है। सब लोग क़ियामत के दिन अपने कर्मों का बदला पाने के लिए जीवित करके इकट्ठा किये जायेंगे। (19:68),भले लोग अल्लाह के सामने मेहमान के रूप में पेश होंगे तथा पापियों को हांककर दोज़ख़ के घाट उतार दिया जाएगा। (19:85-86), क़ियामत अचानक आएगी, उसका किसी को पूर्वाभास तक नहीं होगा। (43:66) , क़ियामत के स्वरूप का वर्णन करते हुए 'कुरआन' की अनेक सूरतों में कहा गया है कि वर्तमान लोक की निश्चित अवधि के पश्चात् एक समय ऐसा

आएगा जब इस सृष्टि की सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाएगी। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, एक-दूसरे से टकराकर नष्ट हो जाएँगे। आसमान फट जाएगा, उसका रंग पिघले हुए तांबे की तरह हो जाएगा, ज़मीन भूचाल से कांपने लगेगी, पहाड़ अपनी जगह से उखड़ जाएंगे और धुने हुए रंगीन ऊन की तरह से उड़ते दिखाई देंगे। इस आशय का एक विवरण द्रष्टव्य है।

इस उद्धरण में एक ओर जहां क़ियामत की भीषणता का वर्णन है, उसका रोमांचकारी विवेचन है, वहीं उन बातों का उल्लेख भी है जो लोगों को मरने के पश्चात् दुबारा जीवित करने के समय सामने आएंगी, जबकि सूर्य को लपेट दिया जाएगा और जब तारे धूमिल पड़ जाएंगे, और जब पहाड़ चलाए जाएंगे (81:1-3), आसमान जब फट जाएगा, और जब सितारे बिखर जाएंगे, और जब समुद्र फूट निकलेंगे और जब कब्रें उखाड़ दी जाएंगी (82:1-4), और जब ज़मीन फैला दी जाएगी, और जो कुछ उसमें है उसे बाहर डाल देगी और बिल्कुल ख़ाली हो जाएगी। (84:3-4), जब हिला डाली जाएगी, ज़मीन जैसा उसे हिलाया जाना है, और बाहर डाल देगी ज़मीन अपने बोझ और मनुष्य कहेगा इसे क्या हो गया। (99:1-3), सृष्टि की इस प्रलयात्मक स्थिति से सभी हतप्रभ हो जाएंगे। लोगों का हाल यह होगा, जैसे बिखरे हुए पतंगें हों । (101:4)। उस समय घबड़ाहट तथा परेशानी में कोई अच्छे से अच्छे माल की भी परवाह नहीं करेगा। उन्हें अवसर ही कहाँ होगा इस सम्बन्ध में सोचने का : 'और जब दस मास की गाभिन ऊँटनियाँ छुटी फिरेंगी।' (81:4), 'कितने ही दिल उस दिन धड़क रहे होंगे, उनकी निगाहें झुकी हुई होंगी।' (79:89)। (उसी समय) सूर (बिगुल) में फूंक मारी जाएगी, तो जो आकाशों में है और जो धरती में है हौल खायेगा—सिवाय उसके जिसे अल्लाह ने चाहा। एक बार जब सूर फूंका जाएगा तो लोग घबड़ा उठेंगे, सब पर भय छा जायगा। लेकिन अल्लाह जिनको

चाहेगा इस घबराहट से बचा लेगा। (27:87)। फ़रिश्ते हर पंक्ति और गिरोह के पास पहुंचेंगे। लोगों को उनका कर्म-पत्र दिया जायेगा जिनमें उनके कर्मों का पूरा ब्यौरा होगा। रब के सामने जो उस समय पदार्पण कर चुका होगा, उसके अर्श (सिंहासन) पर ये कर्म-पत्र खोलकर रख दिए जाएंगे। अल्लाह तदनुरूप निर्णय देगा। जिसने जैसा किया है, उसे वैसा ही फल मिलेगा। कुरआन में है: तो जिस किसी को उसका कर्म-पत्र उसके दाहिने हाथ में दिया जायेगा उससे आसान हिसाब लिया जायेगा। (इसके विपरीत) जिस किसी को उसका कर्म-पत्र उसकी पीठ के पीछे से प्रदान किया जाएगा तो वह विनाश को पुकारेगा तथा दहकती आग में दाख़िल होगा। (84:7-12) इसी क्रम में, कर्मानुसार मनुष्यों की तीन श्रेणियां भी वर्णित हैं। पहली श्रेणी उन लोगों की है, जो सदैव अग्रसर रहने वाले हैं। अल्लाह के यहां उनका सबसे ऊंचा दर्जा है। दूसरी श्रेणी मध्यम कोटि के व्यक्तियों की है, जिन्हें 'दाहिनी ओर वाला' कहा गया है। इनका 'हिसाब' आसान है। तीसरे प्रकार के लोगा निकृष्टतम माने गए हैं। इन 'बायीं ओर वाले' व्यक्तियों के लिए दोज़ख़ की आग पूर्वनिश्चित है।

क़ियामत के इस वर्णन में प्रलय का जो संकेत है, वह 'श्रीमद्भगवत' के प्रस्तुत विवरण से बहुत कुछ समानता रखता है--

द्विपरार्धे त्वतिक्रन्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै।।
एष प्राकृतिको राजन् प्रलयो यत्र लीयते।
अण्डकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते।।
पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन् न वर्षति।

तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः।।

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः।
सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः।।

रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति।
ततः संवर्तको वह्निः संकर्षणमुखोत्थितः।।

दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरानथ।
उपर्यधः समन्तान्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः।।

दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत्।
ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम्।।

परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसाऽऽवृत्य।
ततो मेघकुलान्यंग चित्रवर्णान्यनेकशः।।

शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः।
तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम्।।

द्वादश स्कन्ध, अध्याय 4, श्लोक संख्या 5-13

अर्थात् परमेष्ठी ब्रह्मा के सौ वर्ष व्यतीत होने पर प्राकृत प्रलय होता है। इस समय अण्डकोश का संघात लीन हो जाएगा। प्रथम सैकड़ों वर्ष तक वर्षा नहीं होगी, जिससे मनुष्यादि जीव तड़प-तड़प कर विनष्ठ हो जाएंगे। सब प्रकार के जल को सांवर्तक (प्रलयकालीन) सूर्य खींच लेता है। अनन्तर संकर्षण भगवान के मुख से भड़की हुई अग्नि समस्त चराचर को फूंक डालेगी। इस प्रकार चारों ओर से जलते हुए भूपिण्ड की दशा ठीक जलते हुए गोले के समान हो जाएगी। फिर सैकड़ों वर्ष तक प्रचण्ड वेग से तीव्र वायु चलेगी और सैकड़ों वर्ष तक मूसलाधार वर्षा होगी, जिससे सब

संसार जलमय हो जाएगा। 'मनुस्मृति' में, सम्पूर्ण विश्व के उस महानात्मा में, जिससे सृष्टि उद्भूत हुई है, लीन हो जाने को प्रलय कहा गया है–

युगपत्तु प्रलीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि।
तदायं सर्वभूतात्मा सुखं स्वपिति निर्वृतः।।

– अध्याय 1, श्लोक संख्या 54

मनुस्मृति के उक्त विवरण से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि सृष्टि की जिस तत्व से उत्पत्ति हुई है, उसी में उसका लय होता है। गुरु नानक के अनुसार भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। 'तुझते उपजहि तुझ मांहि समावहि' (मारू सोलहे, 14) अथवा 'जिसते उपजै तिसते बिनसै' (सिंरी रागु, सबद 16) आदि उक्तियों में इस सृष्टि के उसी परमात्मा में लीन हो जाने का संकेत है, जो स्थूल तथा सूक्ष्म सृष्टि का निमित्त तथा उपादान कारण है। उत्पत्ति के समय जो तत्व जिस तत्व का उत्पादक होता है, ठीक उसी प्रकार विलोम क्रम में उत्तरोत्तर वह उसी में लीन हो जाता है। लीन होने का क्रम 'श्रीमद्भागवत' में इस प्रकार वर्णित है–

तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे।
ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते।।
अपां रसमथो तेजस्तालीयन्तेऽथ नीरसाः।
ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा।।
लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम्।
स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम्।।
शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते।

तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिको गुणैः।।
महान्ग्रसत्यहंकारं गुणाः सत्वादयऽच तम्।
ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान कालेन चोदितम्।।

द्वादस स्कन्ध अध्याय 4, श्लोक संख्या 14-18

अर्थात्, जब जलमग्न पृथ्वी का गुण गन्ध नष्ट हो जाएगा तो पृथ्वी भी नष्ट हो जाएगी। जल के गुण रस को अग्नि फूंक डालेगी, तब जल भी लीन हो जाएंगे। तेज का गुण रूप वायु में लीन हो जाएगा, तब तेज भी नहीं रहेगा। वायु के स्पर्शादि गुण आकाश में समा जाएंगे, तब वायु भी नष्ट हो जाएगी, तब आकाश के गुण शब्द को सूक्ष्म भूत ग्रासकर जाएंगे, वह भी उनमें लीन हो जाएगा। अनन्तर इन्द्रियों का अधिष्ठाता देवता-अहंकार-उत्तरोत्तर महातत्व में लीन हो जाएंगे। तब वही शुद्ध, निर्लेप, निरंजन ब्रहम रह जाएगा। शेष संसार अव्यक्त रूप में परिवर्तित हो जाएगा।

'कुरआन' में अनेक स्थानों पर उल्लेख है कि क़ियामत में भी 'रब' शेष रह जाएगा 'और तुम्हारे रब का प्रतापवान एवं उदार स्वरूप शेष रह जाएगा।' (55:27)। उसके अतिरिक्त अन्य वस्तुएं विनष्ट हो जाएंगी। 'बाइबिल' में क़ियामत के दिन को 'ईश्वर के दिन' की संज्ञा दी गई है। उस दिन का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है-- 'पर जैसा रात को चोर आता है, तैसा प्रभु का दिन आयेगा। जिसमें आकाश हड़बड़ाहट से जाता रहेगा और तत्त्व अति तप्त होकर गल जाएंगे और पृथ्वी और उसके कार्य जल जाएंगे, सो जबकि यह सब वस्तु गल जाने वाली है, तुम्हें पवित्र चाल-चलन और भक्ति में कैसे मनुष्य होना और किस रीति से ईश्वर के दिन की बाट जोहना और उसके शीघ्र आने की चेष्टा करना उचित है। जिस दिन के कारण आकाश ज्वलित हो गल जाएगा और तत्व अति तप्त

हो पिघल जाएंगे।" (पितर 3:10-21 12)

एक अन्य उदाहरण देखिए। कियामत की भीषणता का चित्र हृदय को दहला देने वाला है— और देखो बड़ा भूडोल हुआ और सूर्य कम्मल की नाईं काला हुआ और चांद लोहू की नाईं हुआ और जैसे बड़ी बयार से हिलाए जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं तैसे आकाश के तारे पृथ्वी पर गिर पड़ें और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है, अलग हो गया है और सब पर्वत और टापू अपने-अपने स्थान से हट गए (प्रकाशित वाक्य 6:12-14)। संक्षेपतः, उस दिन एक भयंकर ध्वनि के साथ पृथ्वी फट जाएगी, आसमान उड़ जाएगा तथा स्वर्गीय आत्माएं, उनका भौतिक रूप ताप की अधिकता के कारण पिघल कर बह जाएगा और तब जीवात्माओं को एक नया शरीर प्राप्त होगा।

वे ईश्वर के निर्णय के लिए प्रस्तुत किए जाएंगे। एतद्विषयक विवरण इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है— और मैंने एक बड़े श्वेत सिंहासन को और उस पर बैठने हारे को देखा जिसके सन्मुख से पृथ्वी और आकाश भाग गए और उनके लिए जगह न मिली और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकों को ईश्वर के आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गए और दूसरा पुस्तक, अर्थात् जीवन का पुस्तक खोला गया और पुस्तक में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके कर्मों के अनुसार किया और समुद्र ने उन मृतकों को जो उसमें थे दे दिया और उनमें से हर एक का विचार उसके कर्मों के अनुसार किया गया और मृत्यु और परलोक आग की झील में डाले गए, यह तो दूसरी मृत्यु है और जिस किसी का नाम जीवन के पुस्तक में लिखा हुआ न मिला, वह आग की झील में डाला गया (प्रकाशित वाक्य, 20:11-15)। उक्त विवरण इस्लाम-धर्म की कियामत सम्बन्धी मान्यताओं से भिन्न नहीं है। कर्म-पत्र की वैज्ञानिकता के सम्बन्ध में

भी इस स्थल पर विचार कर लेना अपेक्षित है।

हम जो कुछ भी बोलते हैं, हमारे मुख से जो भी ध्वनि निकलती है, वह तरंगों का रूप धारण कर वायुमण्डल में अंकित होती रहती है। इसी तथ्य को सरमोहम्मद यामीन खां ने 'गॉड, सोल, एण्ड यूनीवर्स इन साइन्स एण्ड इस्लाम' नामक पुस्तक में इस रूप में प्रस्तुत किया है–

Every word that we speak, every thought that enters our mind, every act that we perform creates waves which will remain moving till the universe is destroyed. Our words create waves in the air and we hear them as long as the waves remain of such dimensions that the drums in our ears can receive them and we do not hear when the waves become too big for our ears, but the waves remain there all the same. The waves in the air create waves in othermediums. Our thoughts in the same manner create waves in the medium of transmission while our acts create impression on another medium."

"प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं, प्रत्येक विचार जो हमारे मस्तिष्क में आते हैं, प्रत्येक कार्य जो हम करते हैं– ये सब तरंगों का निर्माण करते हैं, जो कि क़ियामत तक विद्यमान रहेंगीं। हमारे शब्द हवा में तरंगें पैदा करते हैं और जितनी देर ये तरंगें इन्हीं आयामों में रहती हैं, उतनी ही देर तक हमारे कर्णपटह इसे सुन सकते हैं और जब ये तरंगें हमारे कानों की क्षमता से परे यानी बड़ी हो जाती हैं, तो हम इन्हें नहीं सुन पाते। लेकिन सभी तरंगें उसी तरह मौजूद रहती

हैं। हवा में ये तरंगें दूसरे माध्यमों में तरंगों का निर्माण करती हैं। इसी तरह हमारे विचार प्रसारण (Transmission) के माध्यम में तरंगें पैदा करते हैं, जबकि हमारे कार्य दूसरे माध्यम को प्रभावित करते हैं।" (पृष्ठ 106, 107)

इस प्रकार हमारे शब्द, हमारे विचार तथा हमारी क्रियाएं चलचित्र के सदृश कर्मपत्र के रूप में सुरक्षित रहती हैं। प्राकृतिक प्रक्रिया होने के कारण कर्मपत्र में छोटे-बड़े सारे कार्य अंकित होते रहते हैं और इसीलिए वहां भूल-चूक का कोई प्रश्न ही नहीं है। इस्लाम कहता है कि मनुष्य को अपने हर कर्म का हिसाब देना है। मनुष्य को इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति से बचाने के लिए 'कुरआन' में बार-बार चेतावनी दी गई है और क़ियामत का भयपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। मनुष्य की असहायावस्था की ओर संकेत करते हुए एक स्थान पर कहा गया है—

"वत्तक़ू योमल्लातज्ज़ी नफ़सुन्अन्नफ़ि सिन शय वला युक़्बलु मिन्हा —शफ़ा अतुव्व ला यौख़ज़ु मिन्हा अद्लुंव्व ला हुम्युन्सरून्"
(2:48)

अर्थात्, उस दिन से डरो जिसमें कोई किसी को कुछ भी सहायता न दे सकेगा और न उसकी ओर से सिफ़ारिश स्वीकृत होगी और न ही उसका कुछ बदला लिया जाएगा और न वे सहायता पाएंगे—तथा इस प्रकार मानव-मन को कुमार्ग से हटाकर सत्पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान की गई है।

'कुरआन' में, क़ियामत से ही सम्बद्ध स्वर्ग तथा नरक के प्रश्न भी हैं। इन प्रश्नों का प्रस्तुत धर्मग्रन्थ में सुन्दर समाधान है। 'कुरआन' में स्वर्ग का बड़ा ही मोहक चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस्लाम-धर्म के अनुसार जन्नत वह स्थान है, जो सुख तथा आनन्द से

सर्वथा परिपूर्ण है। अल्लाह के आज्ञाकारियों को आख़िरत में यही स्थान प्राप्त होता है। इस स्थान का वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'उनके लिए ऐसे बाग़ हैं जिनके नीचे नहरें बह रही हैं (2:25), ऐसी नहरें जो पानी की होते हुए भी निर्गन्ध हैं, दूध की होते हुए भी विकाररहित हैं, जो शुद्ध शहद तथा हर तरह के मेवे से युक्त हैं (47:15)। क़ुरआन कहता है–

'निस्संदेह डर रखने वालों के लिए सफलता है–बाग़ हैं और अंगूर, और नवयुवतियां समान आयु वालीं और छलकता मद्य-पात्र। वे वहां कोई बकवाद नहीं, सुनेंगे और न कोई झूठ–' (78:31-35)। (यहां) उनके सीने में एक-दूसरे के प्रति जो कुछ मन-मुटाव होगा उसे हम दूर कर देंगे (7:43)। 'वे और उनकी पत्नियां, (घने) सायों में हैं, मसनदों पर तकिये लगाये हुए, उनके लिए वहां स्वादिष्ट चीज़ें हैं और वे जो भी मांगें मिलता है। (36:56, 57) इसी आशय का एक वर्णन देखिए: 'निश्चय ही अल्लाह का डर रखने वाले ऐसे स्थान में होंगे, जहां न कोई खटका होगा, बाग़ों और जल-स्रोतों के बीच, पतले और गाढ़े रेशमी वस्त्र पहनेंगे और एक-दूसरे के आमने-सामने होंगे। और हम उनका विवाह बड़ी और सुन्दर आंखों वाली, परमरूपवती स्त्रियों से कर देंगे। वे वहां निश्चिन्ततापूर्वक हर प्रकार के मेवे तलब करते होंगे। वहां वे मौत का मज़ा कभी न चखेंगे। बस पहली मौत (दुनियाँ में) जो आ चुकी वह आ चुकी।' (44:51-56)।

एक अन्य विवरण इस प्रकार है: 'निस्संदेह अल्लाह का डर रखने वाले बाग़ों और आनन्दमंगल में हैं, जो कुछ उन्हें उनके रब ने दिया उस से आनन्दित हो रहे हैं और उन्हें उनके रब ने भड़कती आग के अज़ाब से बचा लिया। मज़े से खाओ-पियो जो कुछ तुम

करते थे उसके बदले में। ये पंक्ति में बिछे हुए तख़्तों पर तकिया लगाए हुए हैं और हमने बड़ी और सुन्दर आंखों वाली परमरूपवती स्त्रियों से इनका विवाह कर दिया है। और वे लोग जो ईमान ले आए और उनकी सन्तति ईमान लाकर उनकी राह पर चली हमने उनको उनकी सन्तति से मिला दिया, और हमने उन्हें उनके कर्मों में से कुछ भी घटाकर नहीं दिया, हर व्यक्ति अपनी कमाई के साथ बंधा हुआ है। और हमने दे रखा है उन्हें मेवे और मांस जैसा वे चाहते हैं, वे वहां आपस में प्याले छीन-झपट रहे हैं। उसमें न बेहूदगी और न कोई गुनाह की बात (अर्थात् वहां की शराब में केवल आनन्द ही आनन्द है। यहां की शराब की तरह उसमें कोई ख़राबी नहीं है), और उनके पास उनके लड़के (सेवक) आ जा रहे हैं, वे ऐसे (सुन्दर) हैं जैसे धराऊ मोती', (52:17-24)।

एक अन्य स्थान पर जन्नत से सम्बन्धित इस प्रकार उल्लेख है : 'ये हैं पास रखे जाने वाले, रमणीय उद्यानों में, एक पूरा गिरोह अगले लोगों में से और थोड़े से पिछले लोगों में से, जड़ाऊ तख़्तों पर हैं, टेक लगाए उन पर आमने-सामने बैठे हैं, फिर उनके पास ऐसे किशोर, जिनकी अवस्था सदा एक ही रहेगी, आबख़ोरे (टोटीं तथा दस्तारहित जलपात्र) और आफ़ताबे (टोंटी तथा दस्तायुक्त पात्र) लिए और प्याला निथरी बहती शराब से भरा हुआ, जिससे न उनका सिर दुखे और न उनकी बुद्धि में विकार आए और मेवे जो पसन्द करें, और पक्षी का मांस जिसकी इच्छा हो और बड़ी और सुन्दर आंखों वाली परमरूपवती स्त्रियाँ, जैसे धराऊ मोती हों, जो कुछ वे करते थे उसका यह बदला है, वे उसमें न कोई बकवाद सुनते हैं और न कोई गुनाह की बात, बस यही कहते सुनते हैं : सलाम है, सलाम है। ...वे वहाँ हैं जहां बिन कांटों के बेर हैं, बराबर से लगे हुए 'तल्ह' (के वृक्ष) हैं, दूर-दूर तक फैली हुई छांव हैं, बहता हुआ पानी

है, बहुत-सा मेवा है, जिसका न सिलसिला टूटने वाला है और न उस पर कोई रोक-टोक है, ऊपर लगे हुए बिछौने हैं, हमने उन स्त्रियों को एक विशेष उठान पर उठाया है और हमने उन्हें कुमारी बनाया है, प्रेयसी और सम-आयु' (56:11-26;28-37)।

इस सम्बन्ध में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम (अर्थात् उनपर अल्लाह की रहमत और सलामती हो) का यह कथन भी द्रष्टव्य है– ''जन्नत वालों से कह दिया जाएगा : यहां तुम स्वस्थ रहोगे, कभी बीमार न होगे, सदैव जीवित रहोगे, कभी मरोगे नहीं, हमेशा खुशहाल रहोगे, कभी बदहाल न होगे, सदैव जवान रहोगे, कभी बूढ़े नहीं होगे।'' नबी सल्ल० का उक्त कथन कठोपनिषद् के स्वर्ग-सम्बन्धी निम्नलिखित विवरण से बहुत कुछ समानता रखता है–

स्वर्गेलोके न भयं किंचनास्ति,
न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे,
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।।

– बल्ली 1, मन्त्रसंख्या 12

अर्थात् हे मृत्युदेव! स्वर्गलोक में कुछ भी भय नहीं है। वहां आपका भी वश नहीं चलता। वहां कोई वृद्धावस्था से भी नहीं डरता। स्वर्गलोक में पुरुष भूख-प्यास दोनों को पार करके शोक से ऊपर उठकर आनन्दित होता है। अथर्ववेद में भी देवलोक का इसी कोटि का वर्णन है–

यत्र सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तत्वः स्वायाः

–अथर्व० 6/120/3

अर्थात्, स्वर्ग में मित्रतायुक्त पुण्यात्मा जन अपने शारीरिक रोग को छोड़कर आनन्द करते हैं। एक-दूसरे उदाहरण में कहा गया है–

अनस्थाः पूताः पवनेनशुद्धाः शुचयः
शुचमपि यन्ति लोकम्
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गेलोके बहुस्त्रैणमेषाम्।।

—अथर्व० 4/34/2

अर्थात्, अस्थिरहित, पवित्र वायु से निर्मल, स्वच्छ, पवित्र स्वर्गलोक जाते हैं। कामाग्नि इन देवताओं के उपस्थेन्द्रिय को नहीं जलाता है और स्वर्गलोक में इनके लिए बहुत-सी स्त्रियों का समूह होता है। ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में इन स्त्रियों का इस प्रकार उल्लेख है—

नव्यानव्या युवतयो भवन्तीमहद्देवानाम् सुरत्वमेकम्
— मं० 3, सूक्त 55, मन्त्र सं० 16

अर्थात्, स्वर्गलोक में देवताओं के लिए नयी-नयी युवतियाँ होती हैं। यह देवताओं के लिए एक बहुत बड़ी आत्मरति है। स्वर्ग के स्वरूप-वर्णन के साथ ही स्वर्गलोक में पुण्यात्माओं के निवास की अवधि का उल्लेख करते हुए 'कुरआन' की निम्नलिखित आयत में कहा गया है—

'हर्ष समाचार सुना दो उन लोगों को जो ईमान लाये और जिन्होंने अच्छे कर्म किए कि उनके लिए जन्नत है, जिनके नीचे नहरें बहती हैं, वे जब वहां का कोई फल खाएंगे तो कहेंगे कि यह तो वही फल है जो हमने पूर्व (दुनिया में) खाया था, उनके समीप वहां मिलते-जुलते फल लाए जाएंगे और उनके लिए वहां पर पवित्र युवतियां भी होंगीं, वे सदैव वहां निवास करेंगे।' (2:25)

'आपस्तम्बधर्म' में स्वर्गलोक में पुण्यात्माओं के निवास की अवधि का इस प्रकार निर्देश है-**आभूतसंप्लवास्ते स्वर्गजितः पुनः**

स्वर्गे बीजार्था भवन्ति (सूत्र 2/24/5-6) अर्थात्, वे लोग प्रलय-पर्यन्त स्वर्ग में निवास करते हैं और सृष्टि के पुनः उत्पन्न होने से स्वर्गादिलोकों के बीजभूत होते हैं।

महाभारत में स्वर्गलोक का विशद वर्णन है। इसके अनुसार स्वर्ग पुण्यकर्मों से प्राप्त होने वाला देवलोक है। इसमें इन्द्रपुरी प्रधान है। यह सौ योजन विस्तृत और एक हज़ार दरवाज़ों से सुशोभित है। वहां ययाति ने एक हजार वर्षों तक निवास किया था। वहीं नन्दनबन है, जहां इच्छानुसार रूप धारण करके अप्सराओं के साथ विहार करते हुए वे दस लाख वर्षों तक रहे (आदि० 89/16, 19)। यहां जो इन्द्र की सभा है, उसकी लम्बाई डढ़ सौ और चौड़ाई सौ योजन की है। वह आकाश में विचरने वाली तथा इच्छानुसार तीव्र या मन्द गति से चलने वाली है। उसकी ऊंचाई भी पांच योजन है। उसमें बुढ़ापा, शोक और थकावट का प्रवेश नहीं है। वहां भय नहीं है। वह मंगलमयी और दिव्यशोभा से सम्पन्न है। उसमें ठहरने के लिए सुन्दर-सुन्दर महल और बैठने के लिए उत्तमोत्तम सिंहासन बने हुए हैं। वह रमणीय सभा दिव्य वृक्षों से सुशोभित है। गन्धर्व और अप्सराएं नृत्य, वाद्य एवं गीतों द्वारा मनोरंजन करती हैं (सभा० अध्याय 7)। इस स्वर्ग में प्रवेश के लिए सात द्वार हैं। वे हैं—दान, तप, शम, दम, लज्जा, सरलता और सब पर दया। इन द्वारों से इस देवलोक में सरलता से प्रवेश किया जा सकता है। (आदि० 90/22)। 'हदीस मिश्कात बाबुल जन्नह' में सातवें आसमान पर स्थित जन्नत के आठ (दर्जे) बतलाए गए हैं।

स्वर्ग का यह श्रेणी-विभाजन कर्म की प्रधानता सिद्ध करता है। जो जैसा कर्म करेगा, वह वैसे ही दर्जे में प्रविष्ट हो सकेगा। थियोसोफ़ी के अनुसार प्रकृति की सात अवस्थाओं के आधार पर स्वर्ग के सात खण्ड माने गए हैं। ये सप्तलोक हैं— भूलोक, भुवलोक

या एस्ट्रल लोक, मनोलोक, बुद्धिलोक, आत्मलोक या निर्वाण लोक, परानिर्वाणलोक तथा महापरानिर्वाण लोक। एक से दूसरे लोक में जाने का अर्थ चेतना को एक कोश से उठाकर दूसरे में स्थित करना है। (Devachanic Plane, लेखिका लेडी बीटर, अनु० रायबहादुर पण्डा बैजनाथ, बी. ए. पृष्ठ संख्या 1-2)।

बौद्ध-धर्म में स्वर्ग का, जिसे 'सुखावती' कहा गया है, दूसरे ही प्रकार से वर्णन है। महात्माबुद्ध ने कहा है—

''इस पृथ्वी से हजारों लोकों के आगे एक आनन्दलोक है, जिसे सुखावती कहते हैं। इसके आस-पास सात कठघरे, बड़े-बड़े परदों की सात श्रेणियां, बड़े-बड़े वृक्षों की सात कतारें हैं। यह अर्हत लोगों का पवित्र स्थान है और इसमें बोधिसत्वों का अधिकार है। तथागत लोग वहां राज्य करते हैं। वहां सात सुन्दर सरोवर हैं, जिनमें निर्मल सुन्दर जल भरा है। इस जल में सात अलग-अलग विशेष लक्षण या गुण हैं। ये गुण या लक्षण अलग-अलग होकर भी एक रूप हैं। हे सारिपुत्र! यह देवचन धाम है। इसके दिव्य उदुम्बर (ऊमर) फूल की जड़ प्रत्येक पृथ्वी की छाया में जमी है। यह फूल उनके लिए फूलता है, जो उसे पा सकते हैं। जो लोग सोने का पुल लांघकर, सात सुनहरी पहाड़ों को पहुंचकर इस लोक में जन्म लेते हैं, वे वास्तव में बड़े सुखी हैं। उनके लिए दुःख का नाश हो गया है।

यहां सात सुनहरे पहाड़ों का अर्थ स्वर्गलोक के सप्त-विभाग से है। जैनमत के अनुसार ''ऊर्ध्वलोक में स्थित सिद्धशिला ही स्वर्गपुरी है। यह सिद्धशिला पैंतालीस लाख योजन लम्बी और उतनी ही पोली है तथा आठ योजन मोटी है। जैसे मोती का श्वेतहार या गोदुग्ध है,उससे भी उजली है, सोने के समान प्रकाशमान और स्फटिक से भी निर्मल है। यह सिद्धशिला चौदहवें लोक की शिखा पर है। उस सिद्धशिला के ऊपर शिवपुर-धाम है। उसमें भी मुक्त

पुरुष रहते हैं। वहां जन्म-मरणादि कोई दोष नहीं है। (मुक्त पुरुष) वहां आनन्द करते रहते हैं, पुनः जन्ममरण में नहीं आते, सब कर्मों से छूट जाते हैं।" (रत्नसार भाग, पृष्ठ 23)। सिद्धशिला की सिद्धिभूमि को 'ईषत्' तथा 'प्राग्भरा' भी कहा गया है। इस दिव्याकाश में केवली (जिनको केवल ज्ञान, सर्वज्ञता तथा पवित्रता प्राप्त हुई है) ही प्रवेश पा सकते हैं—

समवत्तचरण सहि या सव्वं लोगं फुसे निरवसेसं।
सत्तयचउदसभाए पंचयसुपदेस विरईए।।

—प्रकरण० भा० 4/संग्रह सू० 135

अर्थात्, सम्यक आचरण सम्पन्न केवली समुद्घात अवस्था से सर्व चौदह राज्यलोक अपने आत्मप्रदेश करके फिरेंगे। भाव यह है कि ये केवली ही उस चौदहवें राज्य की शिखा पर स्थित लोक में जाते हैं तथा अपने आत्मप्रदेश से सर्वज्ञ रहते हैं।

'बाईबिल' में स्वर्ग एक दिव्यधाम के रूप में माना गया है, जिसका वैभव अतुलनीय है— और जिनका सात दूतों के पास सात पिछली विपतों से भरे हुए सातों प्याले थे उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बात करके बोला कि आ मैं दूल्हन को अर्थात् मेम्ने की स्त्री को तुझे दिखाऊंगा और वह मुझे आत्मा में एक बड़े और ऊंचे पर्वत पर ले गया और बड़े नगर यिरूशलीम को मुझे दिखाया कि स्वर्ग से ईश्वर के पास से उतरा है और ईश्वर का तेज उसमें है, और उसकी ज्योति अत्यन्त मोल के पत्थर की नाईं अर्थात् स्फटिक सरीखे सूर्यकान्त मणि की नाईं है और उसकी बड़ी और ऊंची भीत है और उसके बाहर फाटक हैं और फाटकों पर बाहर दूत हैं और नाम उस पर लिखे हैं अर्थात् इस्राइल की सन्तानों के बारह कुलों के नाम। पूर्व की ओर तीन फाटक, उत्तर की ओर तीन फाटक, दक्षिण की ओर तीन फाटक और पश्चिम की ओर तीन

फाटक हैं और जो मेरे संग बात करता था उसके पास एक सोने का नल था जिसमें वह नगर को और उसके फाटकों को और उसकी भीत को नापे। और नगर चौखुंटा बसा है और जितनी उसकी चौड़ाई उतनी उसकी लम्बाई है और उसने उस नल से नगर को नापा कि साढ़े सात सौ कोश है। उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई समान है और उसके उसकी भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत की नाप से नापा कि एक सौ चवालीस हाथ की है और उसकी भीत की जुड़ाई सूर्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोने का था जो निर्मल कांच के समान था और नगर की भीत की नीवें हर एक बहुमूल्य पत्थर से संवारी हुई थीं, पहली नींव सूर्यकान्त की थी, दूसरी नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की, पांचवीं गोमेदक की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दसवीं लहसनिए की, ग्यारहवीं धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्टोष की और बारह फाटक और बारह मोती थे। एक-एक मोती से एक-एक फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ कांच के ऐसे निर्मल सोने की थी और नगर को सूर्य अथवा चन्द्रमा का प्रयोजन नहीं कि वे उसमें चमकें, क्योंकि ईश्वर के तेज ने उसे ज्योति दी और मेम्ना उसका दीपक है.... और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करने हारा अथवा झूठ पर चलने हारा उसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा, परन्तु केवल वे लोग जिनके नाम मेम्ने के जीवन की पुस्तक में लिखे हुए हैं... और उसने मुझे जीवन के जल की निर्मल नदी स्फटिक की नाईं स्वच्छ दिखाई कि ईश्वर के और मेम्ने के सिंहासन से निकलती है। नगर की सड़क उस नदी के बीच में इस पार और उस पार जीवन का वृक्ष है जो एक-एक मास के अनुसार अपना फल देके बारह फल फलता है।

(प्रकाशित वाक्य, 21:9-27, 22:1-3)।

'बाईबिल' का स्वर्ग-सम्बन्धी उक्त विवरण 'महाभारत' में

निर्दिष्ट स्वर्ग के स्वरूप से समानता रखता है। इसी क्रम में, ईश्वर के सिंहासन का ईसाई मतावलम्बी जो विवरण प्रस्तुत करते हैं,वह भी दृष्टव्य है– देखो स्वर्ग में एक सिंहासन धरा था और उस सिंहासन पर एक बैठा है और जो बैठा है वह देखने में सूर्यकान्त मणि की नाईं है और सिंहासन के चहुं ओर मेघ धनुष है, जो देखने में मरकत की नाईं है और उस सिंहासन के चहुं ओर चौबीस सिंहासन हैं और इन सिंहासनों पर मैंने चौबीस प्राचीनों को बैठे देखा जो उजला वस्त्र पहने हुए और अपने-अपने सिर पर सोने के मुकुट दिए हुए थे। और सिंहासन में से बिजलियां और गर्जन और शब्द निकलते हैं और सात अग्निदीपक सिंहासन के आगे जलते हैं, जो ईश्वर की सातों आत्मा हैं। और सिंहासन के आगे कांच का समुद्र है जो स्फटिक की नाईं है और सिंहासन के बीच में और सिंहासन के आसपास चार प्राणी हैं, जो आगे और पीछे नेत्रों से भरे हैं....उनमें से एक-एक को छः-छः पंख हैं....वे रात-दिन विश्राम न लेके कहते हैं—पवित्र, पवित्र, पवित्र परमेश्वर ईश्वर शक्तिमान जो था और जो है और जो आने वाला है। और जब-जब वे प्राणी जो सिंहासन पर बैठा है जो सदा सर्वदा जीवता है महिमा, आदर और धन्यवाद करते हैं तब-तब चौबीसों प्राचीन सिंहासन पर बैठनेहारे के आगे गिर पड़ते हैं और उसको जो सदा जीवता है प्रणाम करते हैं (प्रकाशित वाक्य 4:3-10)।

इस प्रकार स्वर्ग का विभिन्न धर्मों में जो स्वरूप वर्णित है, उसकी उपलब्धि ही जीवन का चरम लक्ष्य माना गया है। हिन्दू-धर्म के अनुसार पूर्ण ब्रह्म में लीन हो जाना मनुष्य का परमपुरुषार्थ है। इसीलिए कहा गया है—

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीराः
युक्तात्मनः सर्वमेवाविशान्ति ।

—मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक 3, खण्ड 2, मंत्र सं० 5

धीर पुरुष उस सर्वगत ब्रह्म को सब ओर प्राप्तकर (मरणकाल में) समाहित चित्त से सर्वरूप ब्रह्म में ही प्रवेश कर जाते हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में इसी बात को इस रूप में कहा गया है—

अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा,
लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः।

—अध्याय 1, मन्त्र संख्या 7

इस (ब्रह्म) में प्रवेश-द्वार पाकर ब्रह्मवेत्ता लोग ब्रह्म में लीन हो समाधिनिष्ठा में स्थित हुए जन्म-मरण से मुक्त हो जाते हैं। इसी योनि मुक्ति स्थिति को ही, नाम रूप से मुक्त होकर परात्पर दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाना ही मोक्ष माना गया है। मोक्ष का स्वरूप इन पंक्तियों में वर्णित है—

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा
देवाश्च सर्वे प्रति देवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति।

—मुण्डकोपनिषद्, मुण्डक 3, खण्ड 2, मंत्र संख्या 7

अर्थात्, "(प्राणादि) पन्द्रह कलाएं (देहारम्भकतत्त्व) अपने आश्रयों में स्थित हो सकती हैं, (चक्षु आदि इन्द्रियों के अधिष्ठाता) समस्त देवगण अपने पतिदेवता (आदित्यादि) में लीन हो जाते हैं तथा उसके (संचितादि) कर्म और विज्ञानमय आत्मा आदि सबके सब पर अव्यय देव में एकीभाव को प्राप्त हो जाते हैं।" महात्मा बुद्ध ने इस स्थिति को 'निर्वाण' की संज्ञा दी है। उनके अनुसार सभी भावी दुःखों के एकान्तिकनिरोध का ही दूसरा नाम निर्वाण है।

महाकवि अश्वघोष ने 'सौन्दरानन्द काव्य' में परमशान्ति की उपलब्धि को निर्वाण बतलाया है—

दीपो यथानिर्वृतिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचिद्,
स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम्।।
एवं कृती निर्वृतिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नांतरिक्षम्।
दिशं न कांचिद् विदिशं न कांचिद्,
क्लेशक्षयात् केलवमेति शान्ति।।

जिस प्रकार बुझा हुआ दीपक न पृथ्वी की ओर जाता है और न आकाश की ओर; न दिशा की ओर जाता है और न विदिशा की ओर; वह तेल के क्षय होने के कारण शान्ति को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार जीवन-मुक्त जब निर्वाण को प्राप्त होता है, तो न दिशा की ओर जाता है, न विदिशा की ओर; न पृथ्वी की ओर जाता है न प्रकाश की ओर; वह क्लेश से क्षय होने से शान्ति को प्राप्त होता है।

'कुरआन' में स्वर्ग के इस वैभवपूर्ण वर्णन के साथ ही दोज़ख़ का बड़ा ही भयावह चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह चित्र मनुष्यों की आंखें खोलने में सर्वथा समर्थ है। जहन्नम का चित्र प्रस्तुत करते हुए इस पवित्र धर्मग्रंथ में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि दोज़ख़ का अज़ाब बड़ा ही दुःखदायी है। यह आग का एक ऐसा दरिया है जिसका न आदि है न अन्त है। अब तक जितने भी अपकर्मी हुए हैं, तथा होंगे— उन सभी के लिए यह स्थान पर्याप्त है। अपराधियों को तबाह कर देने की इस आग में अद्‌भुत क्षमता है। इसके अज़ाब से बच निकलने की कोई भी युक्ति नहीं है। इस 'हुतमह, जहन्नम' से

जब धुंआ उठता है तो उससे विभिन्न शाखाएं फूट निकलती हैं। मनुष्य तथा गन्धक के पत्थर इस अग्नि के ईंधन हैं। अल्लाह के अवज्ञाकारियों के लिए यह स्थान पूर्व निश्चित है। 'उनके लिए बिछौना भी जहन्नम (आग) का होगा और उनके ऊपर से ओढ़ना भी।' (7:41) अंतड़ियों को काट देने वाला, पिघले हुए तांबे की तरह खौलता हुआ गर्म पानी पीने के लिए दिया जायेगा (47:15,10:4, 18:29), उसे कचलहू का पानी पिलाया जायेगा (14:16), आग के कपड़े, सिरों पर खौलता हुआ पानी और लोंहे के गुर्ज़(गदाएं) उनके लिए यातना के लिए होंगी (22:19-22) किन्तु फिर भी मृत्यु निकट नहीं आती है। उस आग से बाहर निकलना चाहते हुए भी वे बाहर नहीं आ पाते हैं। प्रयत्न करने पर पुनः उसी में फेंक दिये जाते हैं (32:20), उनकी गरदनों में 'तौक़' पड़ी रहती है, सत्तर-सत्तर गज़ की ज़ंजीरें उन्हें आबद्ध किए रहती हैं (13:5; 69:32)। इस दोज़ख़ के सात दरवाज़े हैं और हर दरवाज़े के लिए गिरोह बांट दिए गए हैं : उसके सात दरवाज़े हैं, हर दरवाज़े के लिए उन (लोगों) में से एक 'निश्चित हिस्सा है' (15:44)। उन्नीस दरोगा इस दोज़ख़ पर तैनात हैं।'मैं जल्द ही उसे 'सकर'(दाह) में झोंक दूंगा, और तुम्हें क्या ख़बर कि 'सकर' क्या है, न रहने देगी न जाने देगी, शरीर को झुलसा देने वाली है, उस पर उन्नीस नियुक्त हैं, (74:26-30), इसीलिए ही, कोई वहां से बाहर नहीं आ सकता है। 'दोज़ख़ के निगरां फ़रिश्ते बड़े कड़वे स्वभाव वाले तथा कठोर हैं'।(66:6), जहन्नम में गुनहगारों के साथ किए जाने वाले व्यवहार का वर्णन इन पंक्तियों में दृष्टव्य हैं— निश्चय ही ज़क़्कूम (थूहड़ का वृक्ष-इसका स्वाद कड़ुवा तथा गन्ध अत्यन्त अप्रिय होती है। इसका दूध यदि शरीर में लग जाए तो सूजन आ जाती है। यह वृक्ष तिहामः के क्षेत्र में होता है) का वृक्ष, गुनहगार का भोजन होगा; जैसे पिघली हुई धातु, (इसके लिए 'मुहल' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द अनेकार्थक है।

पिघली हुई धातु, पिघला हुआ तारकोल, तेल की तलछट, पीप तथा रक्त आदि इसके अर्थ हैं) वह पेटों में खौलता होगा, जैसे पानी खौले, (कहा जाएगा) : पकड़ो इसे भड़कती हुई अग्नि के बीच ढकेल ले जाओ, फिर इसके सिर पर खौलते पानी का अज़ाब उड़ेल दो। (44:43-48)।

एक अन्य चित्र देखिए : 'कितने ही चेहरे उस दिन सहमें हुए होंगे, परिश्रम करते थके-थके दहकती आग में पड़ेंगे, उन्हें खौलते एक स्रोत से पिलाया जाएगा, उनके लिए खाने को कुछ न होगा बस एक 'ज़रीअ' (कांटेदार पौधा जो सूखने पर ज़हरीला तथा बदबूदार हो जाता है) होगा जो न शरीर को पुष्ट करेगा और न भूख में कुछ काम आएगा' (88:2-7)। इतना ही नहीं, दोज़ख़ पूरे शरीर को झुलसा कर रख देगी और तब एक खाल के जल जाने पर उन्हें (आयतों पर विश्वास न लाने वालों को) दूसरी खाल दी जाएगी, जिससे कि वे बार-बार अज़ाब का मज़ा चख सकें; जिन लोगों ने हमारी आयतों का इन्कार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खालें पक जाएंगी,तो हम उन्हें दूसरी खालों में बदल देंगे ताकि वे अज़ाब का मज़ा चखते रहें (4:56)। अल्लाह के चिह्नों को असत्य मानने वाले सदैव दोज़ख़ में ही रहते हैं। उससे ऊपर वे कभी नहीं आ सकते– वल्लज़ीन-कफ़रू बे आयातेना ऊलाईक अस्हा बुन्नारे हुम्फ़ीहा ख़ालेदून्– अर्थात्,'जिन्होंने इन्कार किया और हमारे चिह्नों को झुठलाया वे दोज़ख़ी हैं और सर्वथा उसी में रहेंगे।

हदीसों में भी दोज़ख़ का काफ़ी विस्तृत तथा भयपूर्ण वर्णन है। यह चित्र 'श्रीमद्भावगत' के एतद्विषयक वर्णन से बहुत कुछ समानता रखता है। विभिन्न धर्मग्रंथों में, त्रिलोकी के बीच, दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे जल से ऊपर नरकलोक माना गया है। यहां यमराज मृत प्राणियों को कर्मानुसार दण्ड देने का कार्य करते हैं।

'श्रीमद्भागवत' में अट्ठाइस प्रकार के नरकों का वर्णन मिलता है। यह वर्णन इस प्रकार है—

'तत्र हैके नरकानेकविंशति गणयन्ति। अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽधतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकर मुखमन्दकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयः पानमिति।। किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतोदन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमि-त्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः।।7।।

—पञ्चमस्कन्ध, 26वां अध्याय।

अर्थात्, तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्र-वन, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशासन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान क्षारकर्दम, रक्षगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटिनिरोध, पर्यावर्तन तथा सूची—मुख—ये अट्ठाइस नरक हैं। कर्मानुसार जीव को इन नरकों में वास करना होता है। किस कुकर्म से कौन-सा नरक मिलता है तथा किस-किस दंड को भोगना पड़ता है, इस विषय में 'सुख-सागर' का निम्नलिखित वर्णन दृष्टव्य है—

"जो मनुष्य दूसरे के धन को तथा स्त्री-पुत्र आदि को हर लेता है, वह यमदूतों के पाशों में बांधा हुआ 'तामिस्र' नामक नरक में पटक दिया जाता है, वहां पर भूखों मरकर प्यासा रहकर उसे बड़ी मार खानी पड़ती है। जो पुरुष को ठगकर उसकी स्त्री आदि को भोगता है, वह पुरुष 'अन्धतामिस्र' नरक में जाता है। उस जगह

ड़े-बड़े दुःख पाता है और उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तथा सकी आंखें फूट जाती हैं। और जो मेरा और मैं के अभिमान में ाकर प्राणियों से बैर करता है और अपने ही कुटुम्ब का ालन-पोषण करता रहता है, वह 'रौरव' नाम के नरक में पड़ता । वहां पर जिन प्राणियों की उसने हिंसा की है वे ही प्राणी उसे रुरु' नाम के जन्तु बनकर काटते और खाते रहते हैं। जो मनुष्य पनी देह का ही पालन करता रहता है वह 'महारौरव' नरक में ड़ता है। वहां पर क्रव्याद (मांस खाने वाले) रुरु नाम के प्राणी सके मांस को शरीर में से नोच-नोच कर खाते हैं और जो जीते हुए शु तथा पक्षियों को पकाकर खाता है, उसको नरक में यमदूत ताते ल में डालकर 'कुंभीपाक' नरक में रांधते हैं। जो पिता और ाह्मणों से द्रोह करता है वह 'कालसूत्र' नरक में तपते हुए तांबे के ढ़ाह में पटक दिया जाता है, जिससे उसकी सारी देह जलती रहती । वहां पर पशुओं के रोमों की संख्या के समान हजारों वर्ष ड़ी-बड़ी यातनाएं भोगता रहता है। जो अपने वेद-मार्ग को ाड़कर, पाखण्ड (ढोंग) में पड़ जाते हैं, उनको यमदूत ले जाकर सिपत्रवन' नामक नरक में पटकते हैं और वहां कोड़ों की मार से न्हें ख़ूब पीटते हैं। तलवार की धार वाले पत्रों से उनकी सारी देह घाव हो जाते हैं। और उन घावों के कारण 'हाय मैं मर गया' इस कार बुरी तरह से डकराते हुए पैड़-पैड़ पर गिरते पड़ते रहते हैं। पने धर्म को त्यागने वाले उस पाखण्ड के फल को इस प्रकार गते रहते हैं। जो राजा या राजसेवक न दण्ड देने योग्य को दण्ड ते रहते हैं, वे मरकर 'सूकरमुख' नरक में पड़ते हैं। वहां ईख के न्ने की तरह पेरे हुए शरीर के विभागों के कारण बेहोश होते हुए ड़ा दुःख पाते हैं। जो पुरुष ईश्वर की दी हुई वृत्ति (जीविका) वालों पीड़ा पहुंचाते हैं, वे 'अन्धकूप' नाम के नरक में पड़ते हैं। वहाँ

पर पशु, पक्षी, मृग, सांप, डांस, जूंआ, मच्छर, मक्खी आदि अने
जन्तुओं से काटे हुए दुःख पाते हैं। जो मनुष्य पंच महायज्ञ किए बि
ही खा लेता है वह कीड़ों के कुण्ड में मरकर गिरता है और वहां स्व
कीड़ा बनकर कीड़ों को ही खाता रहता है और कीड़े उसे नोंचक
खाते रहते हैं। जो चोरी से या जबरन ब्राह्मण की या किसी अन
जाति के मनुष्य की सोने आदि की चीज़ें चुराता है वह मरक
'संदंश' नाम के नरक में गिरता है, वह लोहे की बनी हुई सड़ासि
से उसकी खाल को यमदूत खींचते रहते हैं। जो पुरुष अथवा स्
अगम्य स्त्री अथवा, पुरुष से संभोग करता है, उन दोनों को कोड़ों
मारते-पीटते हुए यमदूत 'तपृसूर्मि' नाम के नरक में ले जाकर पट
देते हैं और फिर तपी (गरम) हुई लोहे की बनी हुई प्रतिमा में बां
देते हैं, जिससे वे जलते रहते हैं, जो मनुष्य पशु आदि योनियों
मैथुन करता है, उसे यमदूत 'वज्रकण्टक', 'शाल्मली' नामक नर
में ले जाकर गिरा देते हैं. और वहां वज्र जैसे कांटों की बनी हु
शाल्मली पर खींचते रहते हैं। जो राजा लोग या उनके कर्मचा
धर्म के मार्ग या मन्दिर आदि स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करते हैं,
विष्ठा, मूत्र, राधि, लोहू, बाल, नाखून, हड्डी, चरबी आदि भरी हु
'वैतरणी' नदी में गोता लगाते हैं। जो शूद्र-स्त्री के साथ अपना ध
खो बैठते हैं, उनके सब आचार-विचार तो नष्ट हो ही जाते हैं और
पशुओं की भांति अपने-विवेक को खोकर सब प्रकार से पतित
जाते हैं। वे मरकर विष्ठा, मूत्र, कफ, मैल आदि से भरे हुए समुद्र
जाकर पड़ते हैं और वहां उनको वही विष्ठा आदि खाना पड़ता है
जो ढोंगी लोग अभिमान में आकर पशुओं को मारते हैं, वे लो
'वैशाख' नाम के नरक में पड़ते हैं और यमदूत उन्हें बड़ी बुरी तर
से मारते पीटते हैं। जो कामासक्त होकर द्विज सवर्ण स्त्री
मुख-मैथुन करते हैं, उनको यमदूत 'लालाभक्ष' नाम के नरक
डालकर वीर्य पिलाते हैं। जो चोर, राजा या राजदूत गांव आदि

लूटते हैं, उनको वज्र जैसी पैनी डाढ़ वाले सात सौ बीस कुत्ते काटते हैं। जो गवाही में झूठ बोलते हैं वे 'अवीचि' नाम के नरक में सौ योजन ऊँचे पर्वत से गिराए जाते हैं। जो ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य या इनकी स्त्री प्रमाद से मदिरापान करते हैं,उनको 'अय:पान' नाम के नरक में,पटक कर उनके मुख में आग से पिघले हुए लोहें के रस को यमदूत टपकाते हैं। जो घमण्डी पुरुष जन्म, तपस्या तथा विद्या में अपने से बड़ों का आदर नहीं करता है, वह खारी कीच में पटका जाता है और उसमें पड़ा हुआ वह बड़ी-बड़ी यातनाएं भोगता रहता है। जो मनुष्य प्राणियों को मारकर भैरव आदि देवताओं की भेंट चढ़ाते हैं और जो स्वतंत्र होकर पुरुष या स्त्री पशुओं का मांस खाते हैं,वे मरकर नरक में उन्हीं पशुओं के द्वारा राक्षस रूप से पैने-पैने शस्त्रों से काटे जाते हैं और वे पशु ही राक्षस रूप होकर उनके रक्त को पीते हैं, नोचते और गाते हैं। जो इस लोक में निरपराध पशुओं को जगंल या गांवों में ले जाकर मारते हैं, वे मरकर नरक में गिरते हैं और यमदूत वहां उनको शूली पर चढ़ाकर पैने-पैने शस्त्रों से काटते हैं। जो मनुष्य भयंकर रूप धारण करके उग्र होकर प्राणियों को डराते हैं,वे 'दंदशूक' नामक नरक में पड़ते हैं, जहां पांच मुंह और सात मुंह के सांप चूहों की तरह उन्हें मुंह फाड़कर निगलते हैं। जो गुफा आदि में प्राणियों को बन्द करके और दम घोटकर मारते हैं,वे मरकर 'अवटनिरोध' नाम के नरक में जाकर गिरते हैं और वहां विषभरे धुंआ से उनके दम घोट-घोटकर यमदूत उनको बड़ी बुरी तरह से दुख देते हैं। जो अतिथि अभ्यागतों को बुरी (घृणा) दृष्टि से देखता है, उसके नेत्रों को वज्र जैसी तीक्ष्ण डाढ़ वाले गिद्ध, कंक, कौआ उपाड़-उपाड़कर खोंसते हैं। जो धन के घमण्ड में आकर द्रव्यनाश होने की चिन्ता से सूखे हुए मुख वाला लोभ में फंसकर पिशाच की तरह धन को जोड़ता रहता है और उसका उपयोग या दान-पुण्य नहीं करता, वह मरकर 'सूचीमुख' नाम के नरक में

जाकर गिरता है। वहां यमदूत उसे सुइयों से छेदते हैं।"

— सुखसागर[1], पृष्ठ संख्या 293 से 296 तक

वेदों में भी नरक-वर्णन मिलता है। यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में नरक को 'महाअन्धकार वाले लोकों' की संज्ञा दी गई है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाSSवृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।।

अर्थात्, अपनी आत्मा का हनन करने वाले मनुष्य मरने के पश्चात् महा अन्धकार वाले लोकों में जाते हैं (यजुर्वेदभाष्यम्, अध्याय 40, पृ० सं० 1263) 'ईशावास्योपनिषद्' में भी नरक को 'अन्धतमः' कहा गया है— अन्धतमः प्रविशन्ति येSविद्यामुपासते (मन्त्र 9)—अविद्या की उपासना करने वाले घोर अन्धकार वाले लोकों में प्रवेश करते हैं। 'बाइबिल' में नरक को 'आग और गन्धक से जलने वाली झील' कहा गया है। उसके अनुसार यही दूसरी 'मृत्यु' है (21:8)।

इस प्रकार, आख़िरत से सम्बन्धित उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इस्लाम-धर्म परलोक में विश्वास रखता है। उसके अनुसार मानव-जीवन का यह उद्देश्य ही है कि परलोक सुधारा जाए। इस लोक की अपेक्षा उस लोक पर अधिक ध्यान दिया जाए। इसके लिए, पारलौकिक जीवन को सफल बनाने के लिए सत्कर्मों पर बल दिया जाना आवश्यक है। इससे व्यक्ति का नैतिक शरीर-जिसके भीतर पाप तथा पुण्य की चेतना विद्यमान है—पुष्ट होगा। परिणामस्वरूप, मनुष्य पापमार्ग से हट कर शुभ कर्मों की प्रेरणा प्राप्त कर सकेगा। इस प्रेरणा की प्राप्ति ही 'कुरआन' की शिक्षाओं का रहस्य है।

---

1. श्रीमद्भागवत, पाचवां स्कन्ध, छब्बीसवां अध्याय।

सृष्टि

विभिन्न धर्म-ग्रन्थों में सृष्टि-रचना पर विस्तार के साथ विचार किया गया है। 'कुरआन' में अल्लाह को स्रष्टा बतलाया गया है। उसी की रहमत का ही परिणाम यह दुनिया है। उसी ने अन्धकार को नष्टकर सृष्टि का निर्माण किया है, उसी ने बेजान ज़मीन में जान डाली है, मुर्दा-भू-भाग को ज़िन्दा किया है।(25:49), उसने ज़मीन को दो दिन में पैदा किया, ऊपर से पहाड़ जमाए, उसमें बरकत (खज़ाना) रखी, उसकी खुराकें ठहरायीं; फिर आसमान की ओर रुख़ किया, वह (आसमान) धुआँ जैसा था, दो दिन में सात आसमानों को पूरा किया और हर आसमान में जो कुछ हुक्म देना था, भेज दिया, दुनिया के आसमान को (निकटवर्ती आकाश को) दीपकों से सुशोभित किया। (41:9-20), जमीन तथा आसमानों में प्राणधारी फैला दिए (42:29) ज़मीन को ठहरने की जगह बनाई, आसमान को छत (के समान) बनाया (40:64), आसमानों तथा ज़मीन को और जो कुछ उनके बीच है,छः दिनों में पैदा किया, फिर राज सिंहासन पर विराजमान हुआ (25:59), आसमान में बुर्ज (प्रकाशमान तारे) बनाए और उसने एक चिराग़ और चमकता चाँद रखा (25:61)। उक्त विवरण से प्रतीत होता है कि अल्लाह ने पहले दो दिनों में ज़मीन बनाई फिर दो दिनों में वे सारी वस्तुएं जुटा दीं, जो जीवन--यापन तथा सुख-समृद्धि के लिए आवश्यक हैं। फिर उसने आसमान की ओर रुख किया, जिसकी सृष्टि पृथ्वी के निर्माण के साथ ही हो चुकी थी। उसे वर्तमान रूप दो

दिनों में दिया गया तथा सात भागों में विभक्तकर उचित रूप से व्यवस्थित कर दिया गया। इस प्रकार कुल छः दिनों में सृष्टि की रचना हुई। एक अन्य उल्लेख के अनुसार, यह विश्व वर्तमान अवस्था में आने से पूर्व पूरा का पूरा एक ही पदार्थ के रूप में था। एक ही प्रकार की एक विशेष चीज़, जो परस्पर मिली हुई थी, अल्लाह ने उसे विभिन्न भागों में बाँट दिया। "ये आसमान और ज़मीन पहले (सबके सब) परस्पर मिले हुए थे, फिर उन्हें हमने अलग-अलग किया" (21:30), उसने सूरज और चांद बनाये। सब (तारागण) एक-एक मण्डल में तैर रहे हैं (21:33)। सर मुहम्मद यामीन खाँ ने इन आयतों से एक वैज्ञानिक सत्य का प्रतिपादन किया है और वह यह कि सृष्टि के प्रारम्भ में मूल तत्व द्रव्य या पदार्थ एक विशाल नीहारिका अथवा तारामण्डल के रूप में ब्रह्माण्ड में स्थित था। वही पदार्थ चक्रक्रम से कालान्तर में अनेक ग्रहों में विभक्त हो गया। ये ग्रह अपने-अपने मण्डल में तैर रहे हैं।[1]— आर्हीनियस ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है। उसके अनुसार ब्रह्माण्डीय द्रव्यों से जीवित पदार्थ बने। ये ब्रह्माण्डीय द्रव्य उल्कापिण्डों

---

1. The whole matter in cosmos existed in the begining as an big Nebula which by rotation on its axis split up into thousands of small Nebulas all rotating in the same direction. These Nebulas are of which is our galatic system, by further rotation divided themselves into parts out of which different star were formed clusters. These stars by the same rotation discarded matter out of which plannete were formed. All Nebulas and our whole galaxy is rotating in the same direction.—गॉड, सोल एण्ड-यूनिवर्स इन साइन्स एण्ड इस्लाम, पृष्ठ संख्या 56।

(मिटियोराइट्स) द्वारा पृथ्वी के वायुमण्डल में लाए गए। नभमण्डल में नक्षत्रों की गतिशीलता का यह उल्लेख उस मत का खण्डन करता है, जिसके अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता था कि ये तारे किसी ठोस आकाश में जड़े हुए हैं और वह इन्हें लिए हुए घूमता है। अब प्रश्न यह है कि वह पदार्थ क्या था, जिससे इस सृष्टि की रचना हुई है? इसका उत्तर देते हुए, कहा गया है कि यह पदार्थ एक जगह (Space) था, जो कालान्तर में भाप, द्रव और ठोस आदि रूपों में परिवर्तित हुआ है। इस 'स्पेस' को एक स्थान पर धुआं बतलाया गया है। अल्लाह ने जिस समय आसमान की रचना करने के लिए उस ओर रुख़ किया, उस समय उसकी स्थिति धुएँ जैसी थी। एक अन्य स्थान पर सृष्टि-रचना से पूर्व ईश्वर के सिंहासन को पानी पर स्थित बतलाया गया है—और (जमीन तथा आसमानों की रचना से पूर्व) 'उसका सिंहासन पानी पर था।' (11:7)। यहाँ पानी से तात्पर्य पदार्थ की उस द्रव्य-अवस्था से है, जो विश्व को वर्तमान रूप देने से पहले थी। इस प्रकार समस्त विश्व पहले विशाल नीहारिका अथवा तारामण्डल (Nebula) था। अल्लाह ने अपनी योजना के अन्तर्गत ज़मीन और आसमान की रचना की। उसने ज़मीन को एक ऐसे 'गहवारा' (पालना) के रूप में बनाया, जो वायुमण्डल पर विलम्बित है, एक हज़ार मील प्रति घण्टा की गति से अपनी धुरी पर घूम रही है तथा जो छियासठ हज़ार मील प्रति घण्टा के हिसाब से सूर्य का चक्कर लगा रही है। यह भ्रमण-मार्ग उन्नीस करोड़ मील है। इतना ही नहीं, उसने ज़मीन को तुम्हारे ठहरने की जगह बनायी (27:61), तथा इस प्रकार उसे इस योग्य बनाया कि मनुष्य उस पर जीवन व्यतीत कर सके। इसके लिए पृथ्वी में अत्यन्त उचित मात्रा में आकर्षण शक्ति का समावेश किया गया तथा उल्कापात से बचाने के लिए उसे वायुमण्डल से घेर दिया गया। ज़मीन के बाद बिल्कुल ठीक और सही तरीके पर सात आसमान बने (2:29)। इन सात

आसमानों से तात्पर्य सम्भवतः पृथ्वी के अतिरिक्त शेष सृष्टि व
सप्त विभाग से है। इस्लाम-धर्म के अनुसार अल्लाह का एक दि
मनुष्य के एक हज़ार वर्ष के बराबर है—एक दिन जिसकी मिक़दा
(मुद्दत) तुम्हारी गणना के एक हज़ार वर्ष है (22:47, 32:5)।

इससे सिद्ध होता है कि अल्लाह ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना छ
हज़ार वर्ष में की। कुछ लोग छः दिन का अर्थ छः युगों से भी लेते हैं
'उसने अन्धकारपूर्ण रात्रि तथा दिन के प्रकाश का निर्माण किया
(79:29) तथा ऐसी व्यवस्था की जिससे सूर्य तथा चन्द्रमा नियमब
होकर आते-जाते रहते हैं। तदुपरान्त उसने आसमान से पान
बरसाया तथा हर प्रकार की वनस्पति उगाई। इस क्रम में, वर्षा व
विज्ञान-सम्मत कारण का निर्देश करते हुए कहा गया है कि बादल
के विभिन्न टुकड़ों से पानी बरसता है—'क्या तुमने नहीं देखा वि
अल्लाह बादलों को हंकाता है, फिर उन (के टुकड़ों) को परस्प
मिलाता है, फिर उसे तह पर तह करता है, फिर तुम देखते हो वि
उसके बीच से मेघ बरसता है (24:43)। इसी संघर्षण का परिणा
बिजली तथा बादलों की गरज़ भी है।

ईश्वर ने जीवधारियों की पानी से सृष्टि की (21:30)। य
सृष्टि तीन प्रकार की है। पेट के बल चलने वालों की एक कोटि है, द
पैरों से चलने वाले दूसरी कोटि में आते हैं, तथा चौपाए तीसरी कोि
में हैं—'और अल्लाह ने प्रत्येक जीवधारी को (एक प्रकार के) पान
से पैदा किया, तो कोई उनमें पेट के बल चलता है और उनमें को
दो टांगों पर चलता है और उनमें कोई चार पर' (24:45) चौपायों म
उसने ऊँट, बकरी, भेड़ तथा गाय को जोड़े के रूप में निर्माण किय
(6:144)। केवल निर्माण ही नहीं किया है, बल्कि हर चीज़ के लिए
रंग, रूप, शक्ति, गुण, विशेषताएं तथा विकास की सीमा आदि भ
निश्चित कर दी है। (87:1-5)।

मानव-सृष्टि के सम्बन्ध में 'कुरआन' विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इस विवरण के अनुसार, मनुष्य की सृष्टि का आरम्भ गारे से हुआ है। यहां गारे से तात्पर्य मिट्टी के सत से है ('बाइबिल' में भी आदमी की रचना भूमि की धूल से बतलाई गई है—पर्व 2:7) 'कुरआन' के इस उल्लेख से डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त का खण्डन होता है। अरस्तू के 'स्वतः उत्पादन के सिद्धान्त' (थ्योरी ऑफ स्पॉन्टोनियस जेनरेशन) को भी यह उल्लेख निरर्थक सिद्ध करता है। जब मनुष्य की रचना ईश्वर ने की है, तो फिर जगत् जीवन का आरम्भ एक आकस्मिक घटना के रूप में कैसे स्वीकार किया जा सकता है? इसी क्रम में, मानववंश-परम्परा का उल्लेख करते हुए आगे कहा गया है—फिर उसका वंशज एक निचुड़े हुए तुच्छ पानी से चलाया, फिर उसे नख-शिख से दुरुस्त किया और उसमें अपनी रूह फूंकी और तुम्हें कान और आँख और दिल दिए। (32:8, 9)। यहां रूह फूंकने से अर्थ चेतना प्रदान करने से है। मनुष्य में जो चेतना शक्ति पायी जाती है, वह पदार्थों के भौतिक अथवा रासायनिक मिश्रण या प्रक्रिया की देन नहीं है, बल्कि उसका मूलस्रोत अल्लाह की सत्ता है। मानवीय चेतना, वास्तव में अल्लाह के गुणों की एक हल्की प्रतिच्छाया है। उपनिषदों में भी इस तथ्य का प्रतिपादन है। 'यदिद किञ्च प्राण एजति निःश्रुतम्'— जो कुछ भी है, उसी अमर व्यापक जीवन से प्राणित हुआ है और हो रहा है—के द्वारा इस्लाम-धर्म की मानवीय चेतना सम्बन्धी इस मान्यता का समर्थन है। एक अन्य उल्लेख के अनुसार, अल्लाह ने मनुष्य को मिट्टी से पैदा किया तथा वीर्य के द्वारा उसकी नस्ल चलाई। इसके लिए मनुष्य को स्त्री तथा पुरुष के जोड़ों में विभक्त कर दिया (35:11)। यहीं पर, युग्मों के सम्मिलन में ही विकास प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती है। यथार्थतः, जैविक विकास यहीं से प्रारम्भ होता है। इस विकास की विभिन्न स्थितियों का संकेत करते हुए कहा

गया है– 'तो (देखो) हमने तुम्हें मिट्टी से पैदा किया, फिर वीर्य से, फिर रक्त के लोथड़े से, फिर मांस की बोटी से, जो बनावट में पूर्ण भी होती है, अपूर्ण भी, (22:5)। गर्भाधान के बाद आरम्भ में जीव जमे हुए एक रक्त के लोथड़े-सा होता है,फिर वह मांस की एक बोटी के रूप में परिवर्तित होता है, जो पहले रूपहीन तथा अपूर्ण है। आगे चलकर यही बोटियां हड्डी बन जाती हैं तथा उनपर मांस चढ़ जाता है (23:13, 14)। इस प्रकार धीरे-धीरे उसमें मानवीय रूप तथा आकार स्पष्ट होता जाता है। जीव की यह अवस्था मां के पेट में तीन अंधेरियों को पार करने के बाद आती है। (39:5)। तीन अंधेरियों से अभिप्रेत तीन परदे हैं—पेट, गर्भाशय तथा झिल्ली, जिसमें शिशु लिपटा हुआ होता है। इस प्रकार सृष्टि-रचना के मूल में परस्पर एकीकरण, संगति तथा अनुकूलता का भाव विद्यमान है। इसी कारण ही, युग्म (Even) तथा अयुग्म (Odd) अलिंगबद्ध दीख पड़ते हैं। परस्पर विरोधी चीज़ों में एकरसता तथा सामञ्जस्य परिलक्षित होता है। ईश्वर के इस नियम में व्यतिक्रम का सर्वथा अभाव है। इसीलिए कहा गया है—तुम यह कभी न पाओगे कि अल्लाह की रीति टाल दी गई हो (35:43)। इसी बात को ऋग्वेद में 'अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि' (1/24/10) ईश्वर के नियम अटल हैं तथा अथर्ववेद में 'न किरस्य प्रभिनन्ति व्रतानि' (18/1/5) ईश्वर के नियमों को कोई बदल नहीं सकता—कहकर स्वीकार किया गया है।

'कुरआन' के 'अल-बक़रा', 'अल-आराफ़' तथा 'सॉद' आदि विभिन्न सूरतों में मनुष्य रचना का संक्षिप्त इतिहास वर्णित है। विस्तृत विवरण हदीसों में है।

'कुरआन' में रचना के बाद का विवरण दिया हुआ है। जिस समय खुदा ने आदम को 'ज़मीन पर ख़लीफ़ा' बनाकर भेजने की बात फ़रिश्तों के सामने रखी तो उन्होंने इसका विरोध करते हुए

कहा—"क्या तू धरती पर उसे नियुक्त करना चाहता है, जो वहां फ़साद फैलाएगा तथा रक्तपात करेगा? और हम तेरी तारीफ़ के साथ तेरी तसबीह करते और तेरी पाकी बयान करते हैं।" अल्लाह ने कहा, "मैं वे बातें जानता हूँ जो तुम नहीं जानते हो।" इसके बाद अल्लाह ने आदम को सारे नाम सिखाए, फिर उन सबको फ़रिश्तों के सामने पेश किया और कहा, "तुम मुझे इनके नाम बताओ यदि तुम सच्चे हो?" फ़रिश्ते बोले, "तू महिमावान है, हमें तो बस उतना ही ज्ञान है, जितना ज्ञान तूने हमें दिया है। निस्संदेह, तू ही सब कुछ जानने वाला और हिकमत वाला है।" (तब) अल्लाह ने आदम से कहा—"हे आदम! तुम इन (फ़रिश्तों) को इनके नाम बताओ।" जब आदम ने उनके नाम बताए, तो अल्लाह ने फ़रिश्तों से कहा—"क्या मैंने तुमसे यह नहीं कहा था कि मैं आसमानों और ज़मीन की सारी छिपी हुई बातें जानता हूँ! और मैं जानता हूँ जो कुछ तुम ज़ाहिर करते हो और जो कुछ तुम छिपाते हो" (2:30-33)। इस प्रकार, फ़रिश्तों का यह गर्व कि ईश्वर ने उन्हें अग्नि से उत्पन्न किया है। (7:12) इसलिए वे श्रेष्ठ हैं, समाप्त हो गया तथा उन्होंने आदम की श्रेष्ठता स्वीकार कर ली। 'बाइबिल' में भी आदम की श्रेष्ठता के प्रश्न को लेकर प्रभु तथा फ़रिश्तों में इसी प्रकार का वार्तालाप है।

'अहले इस्लाम' का यह मत 'कुरआन' में वर्णित उस तथ्य का समर्थन करता है जिसके अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता है कि सम्पूर्ण सजीव सृष्टि की उत्पत्ति जल से हुई है— अल्लाह ने प्रत्येक जीवधारी को (एक प्रकार के) पानी से पैदा किया (24:45)। प्रसिद्ध दार्शनिक 'थेल्स' ने भी जल को ही हर वस्तु का स्रोत माना है। उनके अनुसार प्रत्येक वस्तु, चाहे वह सजीव हो अथवा निर्जीव, जल से उत्पन्न हुई है। सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित उक्त विवरण का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं—

१. सृष्टि-रचना के पूर्व सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था, पृथ्वी निर्जीव थी।

२. वर्तमान अवस्था में आने के पूर्व विश्व पूरे का पूरा एक पदार्थ अथवा द्रव्य था। कहीं-कहीं इस द्रव्य को धुआँ भी कहा गया है।

३. सृष्टि-रचना के पीछे ईश्वर की इच्छा विद्यमान है। उसने पृथ्वी पर 'ख़लीफ़ा' बनाकर भेजने के विचार से ही मानव-सृष्टि की।

४. समस्त सजीव पदार्थों की रचना जल से हुई है।

अब हम विभिन्न धर्म-ग्रथों में वर्णित सृष्टि सम्बन्धी सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर उक्त तथ्यों की यथार्थता पर विचार करेंगे।

विश्व के सभी दार्शनिक तथा धर्म-ग्रन्थ इस बात से सहमत हैं कि सृष्टि-रचना के पूर्व सर्वत्र अन्धकार व्याप्त था। 'ऋग्वेद' में 'तमआसीत्तमसा गूढ़मग्रे' (मण्डल 10/ सूक्त 129/मन्त्र 3) कहकर तथा 'मनुस्मृति' में—आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः (1/5)—पहले यह विश्व अन्धकार से युक्त था। कुछ भी प्रत्यक्ष ज्ञात न होने के कारण उस प्रलय युग में कोई भी तर्क के द्वारा ज्ञान और लक्षण स्थिर नहीं कर सकता था। सभी ओर अज्ञान एवं शून्यावस्था थी—कहकर विश्व-रचना के पूर्व सभी कहीं अन्धकार ही अन्धकार के होने की बात पर बल दिया गया है। गुरू नानक ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहा है—

अरबद नरबद धुंधूकारा। धरणि न गगना हुकमु अपारा।
नादिनु रैनि न चन्दु न सूरजु सुंन समाधि लगाइदा।।

—नानकवाणी, मारू सोलहे, 15:1

अर्थात्, कई अरबों से परे (अगणित युगों तक) अन्धकार ही

अन्धकार था। (उस समय) न तो पृथ्वी थी और न आकाश था। (प्रभु का) अपार हुक्म (मात्र) था। न तो दिन था, न रात थी; न तो चन्द्रमा था और न सूर्य; (प्रभु) शून्य समाधि लगाए था। 'बाइबिल' में, आरम्भ में पृथ्वी को बेडौल और सूनी बतलाया गया है। उस समय 'गहिराव पर अंधियारा' था और ईश्वर की आत्मा जल के ऊपर तैरती (डोलती) थी। (पर्व 1/आ० 1-2) ऐसा कहकर इस्लाम-धर्म की उक्त मान्यता का समर्थन किया गया है।

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में सृष्टि-रचना का प्रतीकात्मक वर्णन है। इस क्रम में कहा गया है–

कृष्णस्य कामवाणेन रेतःपातो बभूव ह।
ज तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि।।

ब्र० ख० अध्याय 4

अर्थात्, कृष्ण (योगियों के चित्त को आकृष्ट करने वाले ब्रह्म) के काम (एकोऽहं बहुस्याम् रूप संकल्प) के क्षोभ से रेतः (उत्पादनात्मक) वीर्य का पात हो गया। जिसे लज्जा से देवताओ की सभा (जलों) में छोड़ दिया गया। एक हज़ार वर्ष बाद इसी से 'विराट्' की उत्पत्ति हुई।

उक्त रूपक में प्रकृति की अनेक शक्तियाँ और उनके अधिष्ठातृ देव ही रास-समाज है, समस्त शक्तियों का आधारभूत 'ब्रह्म' कृष्ण है, जो कि सबके मध्य में खड़ा होने के उपलक्षण से सृष्टि-विधान का केन्द्र है, 'एकोऽहं बहुस्याम्' की भावना ही उसका स्खलन है तथा सृष्टि के सर्गोन्मुख होने का सम्पूर्ण कार्य-कारण-कलाप ही जल है। ब्रह्म के माध्यस्थ द्वारा प्रकृति की प्रेरणा से जो आरम्भिक कारण-सामग्री का प्रादुर्भाव हुआ उसे ही 'विराट्' नाम से स्मरण किया गया है[1]। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के उक्त

---

1. पुराण दिग्दर्शन, श्री पं० माधवाचार्य, पृ० संख्या 305।

कथन की पुष्टि ऋग्वेद, तैत्तिरीय, शतपथ ब्राह्मण तथा यजुर्वेद के निम्नलिखित उद्धरणों में है–

(क) कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसोरेतः प्रथमं यदासीत।
(10/129/4)।

सृष्टि के आरम्भ में(एकोहऽहंबहुस्याम् रूप)संकल्प था,इसके उपरान्त ज्ञान रूप ब्रह्म से जो मुख्य अथवा प्रथम वीर्य है। (वह) उत्पन्न हुआ।

(ख) तस्य रेतः परापतत् (तैत्तिरीय 1/1/3/8)

उसका (अनेक हो जाने की भावना रूप) वीर्य गिर गया।

(ग) अग्निर्हवाऽअपोऽभिदध्यौ मिथुन्याभिःस्यामिति, ताः सम्बभूव, तासुरेतः प्रासिञ्चत

–(शतपथ 2/1/1/5)

अग्नि ने आप (जलों) को चाहा कि मैं इनसे मिथुनीभाव को प्राप्त हो जाऊँ, वे प्रकट हो गये, उन जलों में रेतः वीर्य-उत्पादक प्रगति–को सेवन किया। और तब 'ततोविराऽजायत' (यजु० 31/5) उससे 'विराट्' उत्पन्न हुआ। इस्लाम-धर्म में भी ईश्वर के संकल्प को सृष्टि-रचना का कारण माना जाता है।

इस्लाम-धर्म में सृष्टि-क्रम से सम्बन्धित विवेचन उपलब्ध नहीं है। इसी कारण तर्क-वितर्क के लिए वहां काफी गुंजाइश है। द्रव्य अथवा पदार्थ से पूर्व क्या था, उसकी उत्पत्ति कैसे हुई, धुआं कहां से आया– आदि अनेक प्रश्न मस्तिष्क में घूम जाते हैं, जिनका समाधान नहीं हो पाता। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ सृष्टि-क्रम का विशद विवेचन प्रस्तुत करते हैं। 'श्रीमद्भागवत्' में सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बन्धित विवरण इस प्रकार है–

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषो प्रतिष्ठितः।

पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयासृजत्।।
विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्त मूर्तिना।।

– स्कन्ध तीन, अध्याय 10, श्लोक संख्या 11-13

अर्थात्, सत्वादि गुणों के परिणाम आदि तथा अन्त से रहित जो निर्विशेष है, वही काल कहा जाता है। परमात्मा उस काल को ही निमित्तभूत बनाकर लीलाओं से स्वयं अपने को ही विश्वरूप से प्रकट किया करते हैं। पूर्वकाल में यह समस्त संसार दैवी माया में मग्न हुआ ब्रह्मस्वरूप में ही स्थित था। उसी विश्व को अव्यक्त मूर्तिकाल द्वारा परमात्मा ने पुनः पृथक प्रकाशित किया है।

ऋग्वेद में भी 'असतः सद् अजायत्' के अनुसार नाम रूप उपाधि रहित ब्रह्म में 'एकोऽहं बहुस्यां प्रजायेय' की भावना को सृष्टि का मूल माना गया है। (10/72/3)। गुरुनानक ने भी शून्य अर्थात् परमात्मा के निर्गुण स्वरूप से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। शून्यावस्था से तात्पर्य उस स्थिति से है जब संसार की उत्पत्ति के पूर्व सारी शक्तियां एक मात्र निर्गुण ब्रह्म में केन्द्रीभूत थीं–

सुंन कला अपरंपरिधारी। आपु निरालमु अपर अपारी।
आपे कुदरति करि करि देखै सुंनहु सुंनु उपाइदा।।17:1।।

उस ब्रह्म की इच्छा का परिणाम ही जगत् है– जा तिसु भाणा ता जगतु उपाइया– अर्थात् जब उस (प्रभु) की मर्ज़ी हुई तो उसने (पलमात्र) में जगत को उत्पन्न कर दिया। 'कुरआन' भी ईश्वर की इच्छा का ही प्रतिफलन सृष्टि के रूप में मानता है। वास्तव में, वही परमात्मा ही– सृष्टि का निमित्त तथा उत्पादन कारण है। इसीलिए ही, 'आपीन्है आपु साजियो आपीन्है रचिओ नाउ' (आसाकी वार) उसने स्वयं अपने को सृष्टि रूप में व्यक्त किया है। इस सृष्टि को सर्ग

भी कहा गया है। 'श्रीमद्भागवत्' में सर्ग की परिभाषा इस प्रकार है:—

अव्याकृत गुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते।।

—12/7/11

अर्थात् जब मूल प्रकृति में लीन गुणों का क्षोभ होता है, तब 'महत्तत्व' उत्पन्न होता है। महत्तत्व से तामस, राजस और वैकारिक (सात्विक)— ये तीन अहंकार उत्पन्न होते हैं। इन अहंकारों से पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रियों और विषयों की उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति के क्रम का नाम 'सर्ग' है। ये सर्ग तीन प्रकार के माने गए हैं— प्राकृत सर्ग, प्रतिसर्ग तथा वैकत सर्ग 'श्रीमद्भागवत्' में प्राकृत सर्ग को छः प्रकार का बतलाया गया है। इनमें से प्रथम सर्ग 'महत्तत्व' है, जो ईश्वर के गुणों की विषमता मात्र है। दूसरा सर्ग 'अहंकार' है, जिसमें द्रव्य, ज्ञान और क्रिया का उदय हुआ। तीसरा सर्ग 'भूतसूक्ष्म' है, जो महाभूतों का उत्पादक है। चौथा ज्ञान और कर्म साधक इंद्रियों का सर्ग है। पांचवा इन्द्रियाधिष्ठाता देवगणों का और मन का सर्ग है तथा छठा 'तमः' का सर्ग है, जो पांच भेदों वाली अविद्या आवरण विक्षेप रूप से पुरुषों की बुद्धि को मुग्ध करती है।[1] इन्हीं महत्तत्व और अहंकार आदि से समस्त चर और अचर प्राणियों की उत्पत्ति होती है— उसी प्रकार जैसे एक बीज से दूसरा बीच पैदा होता है। भगवान की प्रेरणा से पूर्वजन्म की वासनाओं के जागृत होने के कारण जीव अपना-अपना नाम तथा रूप ग्रहण कर लेते हैं। उसी उत्पन्न हुई सृष्टि का नाम 'विसर्ग' अथवा 'प्रतिसर्ग' है।[2] स्थावर, तिर्यग् तथा मानव-सृष्टि को वैकृत सृष्टि माना गया है। स्थावर-सृष्टि की छः

1. श्रीमद्भागवत, 3/10/14-74 ।
2. श्रीमद्भागवत, 12/7/12 ।

कोटियां हैं—वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार (वांस, गन्ना आदि जिनकी छाल अत्यन्त दारूण होती है), वीरुध (जिनकी बेलि केवल भूमि पर ही रहे ऊपर न चढ़े जैसे खरबूजा, तरबूज आदि) तथा द्रुम (जिनमें पहले फूल आएं और फिर फूल ही फल हो जाएं जैसे जामुन, अनार आदि) तिर्यग् अर्थात् पशु-पक्षियों की सृष्टि अट्ठाइस प्रकार की मानी गई है। इनमें दो खुर वाले, एक खुरवाले, पांच नख वाले पशुओं के साथ ही बगुला, गिद्ध, बाज, बटेर, भल्लक, हंस, मोर, सारस, चकवा, कौआ तथा उल्लू आदि आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की गणना की गई है। मनुष्यों की सृष्टि स्त्री-पुरुषात्मक है।[1] इस सम्पूर्ण वैकृत सृष्टि को उद्भिज्ज पश्वादिक तथा मनुष्य-इन तीन कोटियों में भी रखा जा सकता है। 'श्री सूर्य्य गीता' में भी सृष्टि तीन प्रकार की बतलाई गई है—आधिभौतिकी, आधिदैविकी तथा आध्यात्मिकी—

सृष्टिश्चाऽत्र त्रिधा प्रोक्ताऽऽधिभौतिक्याधिदैविकी।
आध्यात्मिकीति तत्राद्या पिण्डसम्बन्धमनुश्ते।।
द्वितीयाऽपि च ब्रह्माण्डसम्बन्धाऽऽध्यात्मिकी तथा।
विराट् सम्बन्धितां याति तत्रऽऽद्ये सादि सान्तिके।।

—अध्याय 5, श्लोक संख्या 5-6

इनमें से आधिभौतिकी सृष्टिपिण्ड-सम्बन्धी, आधिदैविकी ब्रह्माण्डसम्बन्धी तथा आध्यात्मिकी विराट्-सम्बन्धी है। विराट सम्बन्धी होने के कारण आध्यात्मिकी सृष्टि अनादि तथा अनन्त है। स्पष्टता की दृष्टि से 'श्री सूर्य्य गीता' का सृष्टि-क्रम संबंधी विवरण प्रशंसनीय है। एतदर्थ दृष्टव्य भी— "पश्चात् सृष्टि के समय पुरुष द्वारा अधिष्ठित गुण-साम्य से गुणव्यंजन अर्थात् महत्तत्व उत्पन्न हुआ। महत्तत्व त्रिविध है— सात्विकी, राजसिकी और तामसिकी। बीज जिस प्रकार त्वचा द्वारा आवृत रहता है, उसी प्रकार पूर्वोक्त

---

1. श्रीमद्भागवत 3 10 18-25।

गुण साम्य (प्रधानतत्व) ने महत्तत्व को आवृत किया अर्थात् प्रधानतत्त्व महत्तत्व में व्यापक होकर स्थित हुआ। महत्तत्व से वैकारिक अर्थात् सात्विक, तैजस (राजस) और भूतादि (तामस)— इस त्रिविध अहंकार की उत्पत्ति हुई। अहंकार त्रिगुणात्मक है, अतः पंच भूत और इन्द्रियों की उत्पत्ति का कारण है। जिस प्रकार प्रधानतत्व द्वारा महत्तत्व आवृत है, उसी प्रकार महत्तत्व द्वारा अहंकार तत्व भी आवृत है। तामस अहंकार तत्व ने क्षुभित अर्थात् कार्योन्मुख होकर शब्दतन्मात्र और शब्दतन्मात्र से शब्दगुणविशिष्ट आकाश की सृष्टि की एवं दोनों को आवृत कर लिया। आकाश ने क्षुभित होकर स्पर्श-तन्मात्र की सृष्टि की। उसके द्वारा स्पर्शगुणविशिष्ट बलवान वायु उत्पन्न हुआ और आकाश ने वायु को आवृत कर लिया। तदनन्तर वायु के क्षुभित होने से रूपमात्र और ज्योति उत्पन्न हुई। ज्योति वायु के द्वारा आवृत हुई। ज्योति के क्षुभित होने से रसतन्मात्रा उत्पन्न हुई। उससे रसगुणविशिष्ट जल का जन्म हुआ, वह ज्योति के द्वारा आवृत है। जल ने क्षुभित होकर गन्धतन्मात्रा की सृष्टि की। उससे पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। उसका गुण गन्ध है।[1] 'वेदान्त' भी इसी क्रम को स्वीकार करता है।[2]

उक्त विवरण से ज्ञात होता है कि 'अहंकार' ही सृष्टि की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। गुरुनानक ने इस अहंकार को 'हउमै' कहा है— हउमै विचि जगु उपजै (सिधगोसटि, पउड़ी 68)। इस 'हउमै' की उत्पत्ति 'हुकंम' (प्रभु की मर्ज़ी) से हुई है। 'योगवासिष्ठ' के अनुसार भी यही अहंकार सूक्ष्म तथा स्थूल सृष्टि का कारण है।[3]

---

1. श्री गुर्व्यगीता, अध्याय 5, श्लोक संख्या 10 से 21 तक का भावानुवाद।
2. **श्री सदानन्द विरचित 'वेदान्तसारः' टीकाकार श्री गुरु शांत स्वामी, पृष्ठ सं० 40-43।**
3. **'दि योगवासिष्ठ', बी. एल. अत्रे, पृष्ठ संख्या** 190।

उपनिषदों में भी सृष्टि-क्रम प्रकारान्तर से इसी प्रकार वर्णित है। 'प्रश्नोपनिषद्' में इस क्रम का इस रूप में निर्देश है—

"स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्न मन्नीद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्मलोका लोकेषु नाम च"

—प्रश्न 6, मन्त्र संख्या 4

अर्थात् उस पुरुष ने प्राण को रचा, फिर प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन और अन्न को तथा अन्न से वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोकों को एवं लोकों में नाम को उत्पन्न किया। 'सामवेद' के निम्नलिखित मन्त्र की सृष्टि-रचना से संबंधित उक्त विवरण के सारांश के रूप में स्वीकार किया जा सकता है—

जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशासत श्रिये।
अयध्रुणो रयीणां चिकेतदा।

—प्रथम प्रपाठक, नवम् खण्ड, मन्त्र संख्या 5

अर्थात् यह नित्य, कभी न विचलित होने वाला, सात माता अर्थात् सृष्टि के निर्माता पांचभूत, महत, अहंकार-इससे सृष्टि को प्रकट करता हुआ अपने विभूति रूपि शोभा या आश्रय के लिए उत्तम धारणाशक्ति पर वश करना है। वही परमेश्वर समस्त ऐश्वर्यों को भली-भांति जानता है। इस सृष्टि प्रक्रिया के पूर्ण होने में लाखों वर्ष लगे। 'देवीभागवत्' के अनुसार, वह माया सैकड़ों मन्वन्तर पर्यन्त ब्रह्म तेज से जाज्वल्यमान रही। तदनन्तर उससे समस्त विश्व का आधारभूत, सोने के बराबर चमकता हुआ डिम्भ (शिशु) पैदा हुआ—

शतं मन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेज सा।
सुषावडिम्भं स्वर्णाभं विश्व धारालयं पदम्।।

इसी बात को 'श्रीमद्भागवत्' में इस रूप में कहा गया है—

वर्षे पूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम्

—2/5/34

अर्थात् कई सहस्र वर्षों तक वह ब्रह्मण्डलोक रूपी अण्डा जल में शयन करता रहा। तदुपरान्त विराट् पुरुष उस अण्डे का भेदन कर प्रकट हुआ। उसका यह प्रकटीकरण ही सृष्टि की उत्पत्ति है। 'कुरआन' में निर्दिष्ट छः दिनों में सृष्टि की रचना का अर्थ छः युगों से ही लेना चाहिए। तभी उक्त विवरण के साथ उसका सामंजस्य हो सकेगा।

'ऐतरेयोपनिषद्' में पुरुष की रचना का सुन्दर वर्णन है। इस वर्णन के अनुसार, 'आत्मा' ने 'अम्भ' (स्वर्ग), मरीचि (भुवर्लोक), मर (पृथ्वी) तथा 'आप' (पृथ्वी से नीचे का लोक)– इन चार लोगों की रचना करने के बाद, लोकपालों की रचना करने के उद्देश्य से जल से ही एक पुरुष को प्रकट किया। 'ऐतरेयोपनिषद्' का यह कथन 'कुरआन' के 'प्राणधारियों की जल से उत्पत्ति' के सिद्धान्त का समर्थन करता है। उस पुरुष को अवयवयुक्त करने के बाद उसने इन्द्रियगोलक तथा इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं की उत्पत्ति की – उस विराट पुरुष के उद्देश्य से ईश्वर ने संकल्प किया। उस संकल्प किए पिण्ड से अण्डे के समान मुख उत्पन्न हुआ। मुख से वाक् और वागीन्द्रिय से अग्नि पैदा हुई। फिर नासिकारन्ध्र प्रकट हुए, नासिकारन्ध्रों से प्राण हुआ और प्राण से वायु। इसी प्रकार नेत्र प्रकट हुए तथा नेत्रों से चक्षु-इन्द्रिय और चक्षु से आदित्य उत्पन्न हुआ। फिर कान उत्पन्न हुए तथा कानों से श्रोत्रेन्द्रिय और श्रोत्र से दिशाएं प्रकट हुईं। तदनन्तर त्वचा प्रकट हुई तथा त्वचा से लोम और लोमो से औषधि एवं वनस्पतियां उत्पन्न हुईं। इसी प्रकार हृदय उत्पन्न हुआ तथा हृदय से मन और मन से चन्द्रमा प्रकट हुआ। फिर नाभि उत्पन्न हुई तथा नाभि से अपान और अपान से मृत्यु की अभिव्यक्ति हुई। तदनन्तर शिश्न प्रकट हुआ तथा शिश्न से रेतस् और रेतस् से आप हुआ[1]। इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं के द्वारा अन्न तथा आयतन की

---

1. ऐतरेयोपनिषद् अध्याय 1, खण्ड 1, मन्त्र संख्या 4।

याचना किए जाने पर वह उनके लिए पुरुष ले आया। मनुष्य-शरीर को देखकर वे देवता प्रसन्न हुए। 'पुरुषो नाव सुकृतम्' कहकर अधिष्ठान की प्रशंसा भी की। तब ईश्वर ने उनसे कहा— यथायतनं प्रविश—अपने-अपने आयतनों में प्रवेश कर जाओ। फलतः "**अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रंभूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशश्चन्द्रमा मनोभूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपाने भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्**[1]"— अग्नि ने वागिन्द्रिय होकर मुख में प्रवेश किया, वायु ने प्राण होकर नासिका -रन्ध्रों में, सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय होकर नेत्रों में, दिशाओं ने श्रवणेन्द्रिय होकर कानों में, औषधि और वनस्पतियों ने लोम होकर त्वचा में, चन्द्रमा ने मन होकर हृदय में, मृत्यु ने अपान होकर नाभि में तथा जल ने वीर्य होकर शिश्न में प्रवेश किया। इस प्रकार पिण्ड की तो रचना हो गई, किन्तु, प्राण-प्रतिष्ठा अब भी शेष रह गई थी। इसलिए परमात्मा ने मूर्द्धद्वार से शरीर में प्रवेश किया— स एतमेवा सीमानं विदार्येतया द्वारा प्रापद्यत[2]— वह इस सीमा (मूर्द्धा) को ही विदीर्णकर इसी के द्वारा शरीर में प्रवेश कर गया। 'कुरआन' में भी मनुष्य को श्रेष्ठ बतलाया गया है। उसकी इस श्रेष्ठता का कारण वह चेतना है, जो ईश्वर-प्रदत्त है। इस चेतना के संबंध में 'कुरआन' में तो यहां तक कहा गया है कि यह अल्लाह की 'रूह' ही हैं जो वह उसमें फूंक देता है (32:9)। ईश्वर की रूह में किसी भी प्रकार के विकार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। ईसाइ मत भी 'आदम' की श्रेष्ठता स्वीकार करता है। 'बाईबिल' में, पुरुष-रचना से सम्बन्धित उल्लेख इस प्रकार है— तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम

---

1. ऐतरेयोपनिषद्, अध्याय 1, खण्ड 2, मन्त्र संख्या 4।
2. " " " अध्याय 1, खण्ड 3, मन्त्र संख्या 12।

को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया... भूमि की धूल से आदम को बनाया, उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूंका और आदम जीवता प्राण हुआ.... उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया, उन्हें नर-नारी बनाया.... और परमेश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया, तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी सन्ति मांस भर दिया और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम के पास लाया। (2:7-8 तथा 21/22) इस प्रकार नर-नारियों के योग से सृष्टि का विकास हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम-धर्म में सृष्टि का विस्तृत विवरण है। यह विवरण प्रकीर्ण है। इसीलिए ही, क्रमबद्धता का अभाव है। 'कुरआन' में सृष्टि की व्याख्या तो है, किन्तु क्रम का निर्देश नहीं है। हिन्दूधर्म-ग्रन्थों में यह निर्देश बड़ा ही वैज्ञानिक, बुद्धिसम्मत तथा ग्राह्य है। 'बाईबिल' का सृष्टि-सम्बन्धी उल्लेख इस्लाम-धर्म की एतद्विषयक मान्यता के काफी निकट है।

साधना

इस्लाम-धर्म में इबादत अथवा भक्ति को ईश्वर-प्राप्ति का साधन माना गया है, उस ईश्वर को प्राप्त करने का साधन जिससे भिन्न संसार में कुछ है ही नहीं। मनुष्य का जो कुछ है और मनुष्य के लिए जो कुछ है वह सभी कुछ ईश्वर का ही है। "कुलहुवल्लाहो अहद-अल्लाहुस्समद-लमयलिद-वलमयूलद वलम यकुल्लहू कुफुवन अहद" आदि के द्वारा उस ईश्वर के एक रूप, जन्म रहित, उपाधि-शून्य तथा उसके जैसे किसी दूसरे के न होने की बात को स्वीकार किया गया है। वह ईश्वर सम्पूर्ण सृष्टि का स्रष्टा और नियन्ता (2:29), सर्वज्ञ (2:29, 16:19, 20:110), सर्वशक्तिमान (2:20) तथा अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाला है (2:257)। उसकी इच्छा ही सृष्टि-निर्माण का हेतु है। वही जीवों को पैदा करता है, वही उन्हें रोज़ी देता है। उसी ने ज़मीन को बिछौना बनाया, (43:10-12) तथा मनुष्य को सुन्दरतम् रूप में जन्म दिया (95:4), उसी ने कान, आंख, जीभ, ओंठ तथा दिल देकर मनुष्य की कर्मेन्द्रियों को क्षमता प्रदान की। इस्लाम-मत के अनुसार, जब मनुष्य और उसका सब कुछ ईश्वर का है तो प्रत्येक व्यक्ति को हर समय, हर अवस्था में तथा हर कार्य में ईश्वर का भक्त होना चाहिए। दूसरे शब्दों में इबादत अथवा भक्ति मनुष्य के कुछ समय अथवा कुछ कार्य मात्र से ही सम्बन्धित नहीं है वरन् सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न है। इसीलिए, इस्लाम-धर्म यह आदेश देता है कि 'तू अपने सम्पूर्ण जीवन में जीवन के समस्त साधनों के साथ ईश्वर का भक्त बन, उसकी आज्ञाओं का पालन कर।' इस आदेश को मानकर किए गए प्रत्येक

कार्य में वही महानता होगी, उसी पवित्रता का समावेश होगा जो सच्ची इबादत तथा भक्ति में होती है।

इस्लाम-धर्म में साधना के व्यावहारिक रूप पर अधिक बल दिया गया है तथा उसे अधिक से अधिक वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा की गई है। 'इबादत' के अन्तर्गत नमाज़, ज़कात, रोज़ा तथा हज्ज– इन चार क्रियाओं का नियमित रूप से सम्पादन आवश्यक है।

'कुरआन मजीद' में नमाज़ के लिए 'सलात' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस शब्द का अर्थ किसी चीज़ की ओर बढ़ना, उसमें प्रवेश कर जाना अथवा वस्तु विशेष की ओर ध्यान देना है। उपासना के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल से होता आ रहा है। जिस प्रकार कुरबानी बन्दे को 'रब' के निकट पहुँचाती है। उसी प्रकार नमाज़ भी बन्दे को 'रब' से मिलाती और उससे जोड़ती है। नमाज़ के द्वारा व्यक्ति ईश्वर का स्मरण करता है, जिससे वह अल्लाह की राह में चलते हुए उस ज़िम्मेदारी का बोझ उठा सकता है, जो अल्लाह की ओर से उस पर डाली गई है।

'कुरआन' में प्रतिदिन पांच बार नमाज़ पढ़ने का विधान है। सूर्य के पहली बार दोपहर के बाद ढलने पर 'ज़ुहर' की नमाज़ अदा की जानी चाहिए। 'अस्र' की नमाज़ का समय तब आरम्भ होता है,जब सूर्य दूसरी बार पहाड़ों और ऊंचे टीलों से ढलना प्रारम्भ होता है। सूर्यास्त के समय 'मग़रिब' की नमाज़ तथा अंधकार फैल जाने पर अथवा सूर्यास्त के बाद क्षितिज की लालिमा समाप्त हो जाने पर अथवा कुछ रात गए 'इशा' की नमाज़ पढ़ी जानी चाहिए। 'फ़ज्र' की नमाज़ का समय पौ फटने से लेकर सूर्योदय तक है। इस आशय का उल्लेख करते हुए कहा गया है– और नमाज़ क़ायम करो दिन के दोनों हिस्सों और रात के कुछ हिस्से में (11:114), नमाज़ क़ायम करो जब सूर्य ढले रात अंधेरे तक और प्रातःकाल के कुरआन को भी (ज़रूरी

ठहरा लो), निस्संदेह प्रातःकाल का कुरआन साक्षात् होता है। (17:78)। यहां प्रातःकाल के कुरआन से अभिप्राय 'फज्र' (प्रातःकाल) की नमाज़ से है। 'तसबीह', 'हम्द', 'ज़िक्र', 'कियाम', 'रुकूअ' तथा 'सजदा' आदि शब्द जिनका 'कुरआन' में विभिन्न स्थानों पर उल्लेख है, नमाज़ के अंगों के द्योतक हैं। इसी क्रम में नमाज़ के सम्बन्ध में विभिन्न विधि-निषेधों का उल्लेख करते हुए आगे कहा गया है कि मस्जिदे-हराम (काबा) की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ना चाहिए। तुम जहां कहीं से भी निकलो (नमाज़ में) अपना मुंह मस्जिदे-हराम काबा की ओर फेरा करो (2:149)।

ईश्वर की ओर से आदेश होने के कारण इस विधान का पालन किया जाना अनिवार्य है। नशे की हालत में अथवा नापाकी में नमाज़ पढ़ना अनुचित है—

"हे ईमान वालो! जब तुम नशे में हो तो नमाज़ में व्यस्त न हो जब तक कि तुम यह न जानने लगो कि तुम क्या कह रहे हो और न नापाकी की हालत में नमाज़ के करीब जाओ, जब तक कि स्नान न कर लो, (4:43)।"

इस प्रकार, यात्रियों तथा अस्वस्थ व्यक्तियों के लिए इस बात की छूट है कि वे नापाकी की हालत में भी, मजबूरी के कारण मस्जिद में से गुज़र सकते हैं इतना ही नहीं परिस्थितिवश नमाज़ को कम करके भी पढ़ा जा सकता है। इसके लिए 'कस्र' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका आशय है कि फ़र्ज़ नमाज़ यदि चार 'रकअत' हो, तो दो ही 'रकअत' पढ़ी जाए। यह आज्ञा केवल उन व्यक्तियों के लिए है जो ज़मीन पर सफ़र कर रहे हैं या युद्धस्थल में हैं (4:101) 'कुफ़्र' करने वालों के द्वारा सताए जाने के भय से जमाअत के साथ (सामूहिक रूप से) नमाज़ न पढ़कर अकेले-अकेले भी पढ़ी जा सकती है, 'किबला' की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ना सम्भव न होने पर किसी

भी ओर रूख़ करके नमाज़ अदाकर दी जाए तो भी कोई हानि नहीं है 'रुकूअ' तथा 'सजदा' का अवसर न होने पर इशारों से भी काम चलाया जा सकता है। ज़रूरत पड़ने पर सवारी पर बैठे-बैठे ही या चलते-चलते नमाज़ अदा की जा सकती है। नमाज़ से पूर्व 'वुज़ू' तथा 'मसह' कर लेना चाहिए 'वुज़ू' से अभिप्राय मुंह तथा हाथों का कुहनियों तक धो लेना है। भीगे हुए हाथों का सिर पर फेर लेना 'मसह' कहलाता है। यदि विवशता हो तो स्नान अथवा वुज़ू के स्थान पर 'तयम्युम' (पाक मिट्टी से काम लेना, उससे मुंह तथा हाथों पर 'मसह' करना) से भी काम चलाया जा सकता है: हे ईमान वालो! जब तुम नमाज़ के लिए उठो, तो अपने मुंह और हाथ कुहनियों तक धो लो, और अपने सिरों पर मसह कर लो और अपने दोनों पांव टखनों तक धो लो, और यदि नापाक हो, तो(नहाकर) पाक हो लो। और यदि बीमार हो या सफ़र में हो या तुममें से कोई शौच करके आया हो या तुमने स्त्रियों को हाथ लगाया हो, फिर पानी न पाओ, तो मिट्टी से काम लो, उससे अपने मुंह और हाथों पर मसह कर लो (5:6) नमाज़ पूरे कपड़ों में अदा की जानी चाहिए। अल्लाह मर्यादाहीन लोगों को पसन्द नहीं करता है। इसीलिए इबादत के हर अवसर पर अपनी शोभा का धारण कर लेना आवश्यक है (7:31)। यहां शोभा धारण करने का अर्थ पूरे वस्त्र-पहनकर इबादत करने से है। उपयुक्त और उचित वस्त्र व्यक्ति के लिए शोभा और सभ्यता की निशानी है। इस्लाम-धर्म में जुमे की नमाज़ का विशेष महत्व है। इसीलिए ईमानवालों को आदेश दिया गया है कि जब जुमा की अज़ान हो तो वे अपने सभी कार्य-व्यापार छोड़कर मस्जिद की ओर चल पड़ें, समस्त क्रय-विक्रय बन्द करके अल्लाह की याद के लिए उद्यत हो जाएं। 'हे ईमानवालो! जब जुमा के दिन नमाज़ के लिए पुकारा जाए, तो तुम अल्लाह की याद की ओर दौड़ो और क्रय-विक्रय छोड़ दो, फिर जब नमाज़ पूरी हो जाए, तो ज़मीन में

फैल जाओ और अल्लाह का फ़ज़्ल तलाश करो' (62:9-10) मुसाफ़िर, बीमार तथा स्त्री आदि पर जुमा की नमाज़ वाजिव नहीं है। इस प्रकार नमाज़ मुसलमानों के लिए एक आवश्यक कर्तव्य निर्धारित कर दिया गया है। इस कर्तव्य का पालन करने से व्यक्ति अश्लीलता से दूर भागता है तथा बुरे कर्मों में उसकी अनाशक्ति हो जाती है (29:45)। नमाज़ पर खुद क़ायम रहना मात्र ही व्यक्ति का कर्तव्य नहीं है, वरन् उसे अपने घर वालों को भी नमाज़ के लिए प्रेरित करते रहना चाहिए। (20:132)।

नमाज़ से सम्बन्धित इन विभिन्न आदेशों के माध्यम से व्यक्ति के हृदय में इस धारणा को पुष्ट करने का प्रयत्न किया गया है कि अल्लाह किसी को तंगी में डालना नहीं चाहता, परन्तु वह चाहता है कि तुम्हें पाक करे और अपनी नेमत (कृपादृष्टि) तुम पर पूरी कर दे, ताकि तुम कृतज्ञता दिखलाओ (5:6)। संक्षेप में, नमाज़ जीवन में श्वास की तरह ज़रूरी है। जो नमाज़ से दूर हैं, वह जीवन की वास्तविकता से अनभिज्ञ है– उसे जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं। ऐसा व्यक्ति अल्लाह का अवज्ञाकारी और अकृतज्ञ ही नहीं, वल्कि स्वयं आत्मघाती भी है। 'मुनाफ़िक़' (कपटाचारी) ऐसे ही व्यक्तियों को कहा गया है। इस कोटि के व्यक्तियों का 'क़ुरआन' में इस रूप में उल्लेख है–

मुनाफ़िक़ (अपनी चालों से) अल्लाह को धोखा देना चाहते हैं। हालांकि वही उन्हें धोखे में डाले रखने वाला है। जब वे नमाज़ के लिए खड़े होते हैं तो कसमसाते हुए केवल लोगों को दिखाने के लिए खड़े होते हैं और अल्लाह को थोड़ा ही याद करते हैं, (कुफ़्र और ईमान) दोनों के बीच डांवाडोल हैं, न इधर के न उधर के (4:142-143) उनकी नमाज़ काबा के पास सीटियां बजाने और तालियां पीटने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती (8:35) वास्तव में, जिसे

अल्लाह ही भटका दे, अधर्माचरण के कारण मार्ग-दर्शन के द्वार बन्द कर दे, उसे कौन राह पर ला सकता है? उनके लिए, नमाज़ से बेख़बर अथवा नमाज़ ठीक ढंग से अदा न करने वाले व्यक्तियों के लिए सर्वत्र तबाही ही तबाही है : तो तबाही है ऐसे नमाज़ियों के लिए, जो अपनी नमाज़ से बेख़बर हैं, जो दिखावे का काम करते हैं (107:4-6)। 'मुण्डकोपनिषद्' में भी विधिहीन कर्म का इसी प्रकार का कुफल बतलाया गया है तथा 'आसप्तमांस्तस्य लोकान्हिनस्ति'। के माध्यम से इसी तबाही की ओर संकेत है।

इस्लाम-धर्म में नमाज़ के साथ ही ज़कात पर भी बल दिया गया है। परिभाषिक रूप में, ज़कात उस निश्चित धन को कहते हैं, जिसका अपनी कमाई और अपने माल में से निकालना और उसे अल्लाह के बताए हुए शुभ कार्यों में व्यय करना आवश्यक है। मुहम्मद साहब ने ज़कात की राशि 2½ प्रतिशत निश्चित कर दी है अनाथ, मुहताज, विकलांग तथा मुसाफ़िर आदि इस धन को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। इसीलिए कहा गया है— कह दो कि जो (माल) भी तुम ख़र्च करते हो उसमें (तुम्हारे) मां-बाप, अनाथों, मुहताजों और मुसाफिरों के लिए है (2:215)। जो धन ज़रूरत से अधिक है उसे इन लोगों पर व्यय करना ईमान वालों का फ़र्ज़ है (2:219)। अपने माल मे प्रति स्वभाविक मोह होने पर भी ग़रीब नातेदारों, यतीमों (अनाथों), मुहताज़ों, मुसाफ़िरों और मांगने वालों को देना, गरदनें छुड़ाने अर्थात् गुलामों को आज़ाद कराने के सिलसिले में व्यय करना, वास्तव में अल्लाह की राह में माल का ख़र्च करना है। इस ख़र्च से, सत्पात्र को दिए गए दान से धन बढ़ता है, माल फलता-फूलता है तथा ज़कात करने वाले को ईश्वर की कृपा अनायास ही उपलब्ध हो जाती है: जो लोग अपने माल अल्लाह

1. 'मुण्डकोपनिषद', खण्ड 2, मन्त्र संख्या, 3 पृष्ठ संख्या 33 ।

की राह में ख़र्च करते हैं उन (के ख़र्च) की मिसाल (ज़मीन में बोये हुए) उस दाने की-सी है,जिससे सात बालें निकलें और हर बाल में सौ दाने हों। और अल्लाह जिसके लिए चाहता है ऐसी ही बढ़ोत्तरी प्रदान करता है, जो लोग अपने माल को अल्लाह की राह में ख़र्च करते हैं, फिर जो ख़र्च करते हैं उसके पीछे न तो (लेने वालों पर) एहसान जताते हैं और न सताते हैं, उनका बदला (प्रतिफल) उनके रब के पास है, और उनके लिए कोई भय की बात और न वे दु:खी होंगे, एक उचित (भली) बात कहनी और क्षमा से काम लेना उस सदक़े (दान) से कहीं उत्तम है जिसके पीछे सताना हो। (2:261-263) इसीलिए सताकर तथा एहसान जताकर दान करने का निषेध करते हुए आगे कहा गया है- अपने सदके दान को उस व्यक्ति की तरह बरबाद न करो जो लोगों को दिखाने के लिए अपना माल ख़र्च करता है। उसके ख़र्च की मिसाल ऐसी है जैसे एक चट्टान पर कुछ मिट्टी (जम गई) हो, जब उस पर घोर वर्षा हुई, तो (मिट्टी बह गई) साफ़ चट्टान ही छोड़ गई। ऐसे लोग जो कुछ भी कमायें उससे कुछ भी उनके हाथ नहीं आता (2:264)। मनुस्मृति में भी 'न दत्त्वा परिकीर्तयेत्' कहकर दान देने के बाद अपनी बड़ाई करने का निषेध किया गया है। क्योंकि इससे दान के फल नष्ट हो जाते हैं।[1] नफ़्ल ऐसी दशा में सदक़ा (चाहे वह ज़कात (अनिवार्य दान) हो या ख़ैरात अनिवार्य न होने पर भी अल्लाह की प्रसन्नता के लिए दिया जाने वाला दान) निष्ठा पूर्वक, नि:स्वार्थ भाव से ही दिया जाना चाहिए। इस क्रम में उन्हीं चीज़ों का दान उपयुक्त है जो स्वयं दान देने वाले को प्रिय हों। अल्लाह की राह में उन चीज़ों का ख़र्च जो तुम्हें प्रिय न हो नेकी के दर्जे तक नहीं पहुंचा सकता (3:92)। कुरआन का यह कथन सर्वथा सम्मत है। 'कठोपनिषद्' में ऐसे दान को निरर्थक

---

1. मनुस्मृति, अध्याय 4, श्लोक संख्या 236-237।

बतलाते हुए कहा गया है कि अनिच्छित (अप्रिय) वस्तुओं का दान करने वाला 'अनन्द' (आनन्द शून्य) लोक को जाता है–

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान्स गच्छति ता ददत्।।

–अध्याय 1 मंत्र संख्या 3

अर्थात् उन गौओं का दान करने से, जो जल पी चुकी हैं, जिनका घास खाना समाप्त हो चुका है, जिनका दूध भी दुह लिया गया है तथा जिनकी प्रजनन शक्ति भी समाप्त हो चुकी है, दाता अनन्द (आनन्द शून्य) लोक को जाता है। 'श्रीमद्भगवदगीता' में ऐसे दान, को जिसके पीछे सत्कार का भाव न हो तथा जो तिरस्कारपूर्वक कुपात्र को दिया गया है, 'तामस' धन कहा गया है।[1] 'कुरआन' में गुप्तदान को श्रेष्ठतम बतलाया गया है। इस सम्बन्ध में कई स्थानों पर कहा गया है कि यदि तुम खुले तौर पर सदका (दान) दो तो यह अच्छी बात है और यदि उसे छिपाकर ग़रीबों को दो तो यह तुम्हारे लिए और भी ज्यादा अच्छा है–यह तुम्हारी कितनी ही बुराइयों को दूर कर देगा (2:271)। इससे मनुष्य की आत्मा शुद्ध होती है और उसे विकसित होने का अवसर मिलता है। इस बात को स्पष्टतम रूप में इस प्रकार कहा गया है– (हे नबी!) तुम उनके मालों में से सदका लेकर उन्हें पाक करो और उन (की आत्मा) को विकसित करो और उनके लिए दुआ करो (9:103)। इस प्रकार ज़कात बढ़ी हुई माया-मोह से छुटकारा पाने का सुन्दर साधन है, समस्त बुराइयों को दूर करने का उत्तम उपाय है तथा 'कुरआन' से रहनुमाई पाने की सहज युक्ति है। दूसरे शब्दों में,

---

1. श्रीमद्भगवदगीता, 17/22 ।

अल्लाह की नेमतों का शुक्र अदा करने के लिए ज़कात देना आवश्यक है। ईमान वालों की यही पहचान है कि वे ग़रीबों तथा मुहताजों की आवश्यकताओं को कहां तक पूरा करते हैं। इसलिए ईमान लाने की अनिवार्य विशेषता के रूप में इसे स्वीकार किया जा सकता है।

एक अन्य स्थान पर यह भी कहा गया है कि ज़कात देना आख़िरत (परलोक) को याद रखने का उत्तम उपाय है। इस विधान के द्वारा व्यक्ति को यह सदैव स्मृति बनी रहती है कि मुझे ईश्वर के द्वारा जो कुछ भी मिला है, उसे उसी रूप में वापस करना है; जिस प्रकार उसका दिया हुआ धन उसे अर्पित किया जा रहा है उसी प्रकार यह तन, मन, प्राण सभी कुछ उसके सम्मुख प्रस्तुत है, उसे सादर समर्पित है। इस समर्पण में विनम्रता परमावश्यक है। इस दृष्टि से उसमें 'नमाज़' की विशेषता आ जाती है और इसीलिए ही सत्कार से, आदरपूर्वक, इच्छित वस्तुओं का दान देने वाला सहज ही स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है। 'मनुस्मृति' में भी श्रद्धापूर्वक दान देने वाले के लिए स्वर्ग के कपाट खुले बतलाए गए हैं। इसके विपरीत सत्कार की भावना से शून्य दान को नरक की ओर प्रेरित करने वाला कहा गया है। दान लेने वाले में दान देने वाले की उक्त विशेषताएं आवश्यक हैं—

योऽर्चितं प्रतिगृहणाति ददात्यर्चितमेव च।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकं तु निपर्यये।।

— अध्याय 4, श्लोक संख्या 235

अर्थात्, सत्कार से देने और लेने वाले दोनों ही स्वर्ग को जाते हैं और बिना सत्कार से देने और लेने वाले दोनों नरकगामी होते हैं।

संक्षेप में, सत्पात्र को दिया गया दान महान पापों से निस्तार करता है।[1]

रोज़ा अथवा उपवास भी सच्चे ईमान वाले व्यक्ति के लिए एक आवश्यक विधान है। 'कुरआन' में इसके लिए 'सियाम' शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका मौलिक अर्थ है रुक जाना। रोज़े में मनुष्य प्रातः काल सूर्योदय के पूर्व से लेकर सन्ध्या तक आहार-विहार से रुका रहता है। खाना न खाने तथा स्त्री प्रसंग से दूर रहने की यह क्रिया हृदय तथा आत्मा की शुद्धि, आत्म-नियन्त्रण तथा आध्यात्मिक एवं नैतिक-विकास के लिए वांछनीय है। इससे मनुष्य में धर्मपरायणता आती है, वह संयमी और ईश्वर से डरने वाला हो जाता है तथा परमात्मा की अवज्ञा से बचने लगता है।

'कुरआन' में रोज़े के लिए रमज़ान का महीना उपयुक्त बतलाया गया है। इसी महीने में 'कुरआन मजीद' की धर्मग्रन्थ के रूप में अवतारणा हुई थी। इस ग्रन्थ के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होने के कारण ही रोज़े के लिए रमज़ान का महीना चुना गया है। ''रमज़ान (का महीना) है जिसमें 'कुरआन' (पहले-पहल) उतारा गया लोगों के लिए मार्गदर्शन बनाकर और मार्गदर्शन और सत्य-असत्य के स्पष्ट प्रमाणों के साथ। तो जो कोई तुम में से इस महीने में मौजूद हो, उसे चाहिए कि उसके रोज़े रखे। (2:185) इस्लाम-धर्म धर्मान्धता, अन्धविश्वास तथा सख़्ती के विरुद्ध है। इसीलिए यहां अस्वस्थ तथा यात्री को इस बात की छूट है कि वह रोज़े की गिनती दूसरे दिनों में भी पूरी कर ले : और जो कोई बीमार हो या सफ़र में हो तो वह दूसरे दिनों में (रोज़ों की) गिनती पूरी करे। अल्लाह तुम्हारे लिए आसानी चाहता है, वह तुम्हारे लिए सख़्ती

1. मनुस्मृति, अध्याय 3, श्लोक संख्या 98।

नहीं चाहता, और (यह आसानी इसलिए है) ताकि तुम (रोज़ों की) गिनती पूरी कर लो (2:185) 'फ़िदयः' (अर्थदण्ड) अदा करके भी रोज़े की गिनती पूरी की ज़ा सकती है तथा अल्लाह की पकड़ से बचा जा सकता है: और जो लोग इसकी (अर्थात्, खाना खिलाने की) ताक़त रखते हों उनके ज़िम्मे फ़िदया है– (एक रोज़े के बदले में) एक मुहताज का खाना (देना उनका फ़र्ज़ है)। (2:184)

'क़ुरआन' में रोज़े की सम्यक् विधि का भी निर्देश है। इस निर्देश के अनुसार, प्रभात की सफ़ेद धारी के परिलक्षित होने के समय से लेकर रात के आने तक आहार-विहार का निषेध रोज़े के लिए आवश्यक है। यह निषेध केवल दिन के लिए है। रात्रि में स्त्री-प्रसंग तथा खाने-पीने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है: 'तुम्हारे लिए रोज़े की रातों में अपनी स्त्रियों के पास जाना जायज़ है, वे तुम्हारे लिए वस्त्र (के समान) हैं... तो अब तुम (रमज़ान की रातों में) उनसे (अपनी स्त्रियों से) मिलो और अल्लाह ने जो कुछ तुम्हारे लिए ठहरा दिया है उसके चाहने वाले बनो, और खाओ-पियो यहां तक कि प्रभात की सफ़ेद धारी तुम्हें (रात की) काली धारी से स्पष्ट अलग दिखाई देने लगे, फिर (उस समय से लेकर) रात के आने तक (अपना) रोज़ा पूरा करो (2:187)। मस्जिदों में 'एतकाफ़' के लिए ठहरने वाले, रमज़ान के अन्तिम दस दिन एकान्तवास करने वाले व्यक्तियों के लिए स्त्री-प्रसंग वर्जित है। अल्लाह के द्वारा निर्दिष्ट होने के कारण इस सीमा का उल्लंघन हानिकारक है। इसीलिए ईश्वर की नाखुशी से डरने वाला व्यक्ति रोज़े को सही ढंग से पूरा करता है, कभी भी सीमा का अतिक्रमण नहीं करता है। ऐसा व्यक्ति सदेह स्वर्ग की प्राप्ति कर चिरकाल तक आनन्दमय रहता है। संक्षेप में, रोज़ा 'क़ुरआन' जैसी नेमत (कृपा दृष्टि) का शुक्रिया है। श्रीमद्भागवत में उपवास को मानव का अनिवार्य धर्म माना गया।

१. श्रीमद्भागवत, स्कन्ध सात, अध्याय 11 श्लोक 8 ।

है। इससे संयम तथा आत्म-निग्रह की भावना जागृत होती है।

उपवास के साथ हज्ज भी उपासना का एक अंग है। हज्ज, ज़ियारत अथवा तीर्थ-दर्शन के द्वारा ईश्वर की महत्ता तथा उसका प्रेम स्थायी रूप से मन में बैठ जाता है। हज्ज में मनुष्य सभी कामों को छोड़कर, अल्लाह की पुकार पर उसकी ओर दौड़कर इस बात का परिचय देता है कि वह उसे ही अपना स्वामी, आराध्य तथा सबसे बड़ा शुभचिन्तक मानता है। हज्ज वास्तव में बन्दे की ओर से इस बात की घोषणा है कि उनका प्रेम और श्रद्धा, उसकी पूजा और अर्चना सब कुछ ईश्वर के लिए है। वह केवल उसी की ड्योढ़ी पर अपना सर रख सकता है, उसे चूम सकता है। हज्ज का मूल उद्देश्य ही यही है कि मनुष्य परमात्मा की चाह में उन्मत्त हो कर अपना सर्वस्व उसी की राह में लगा दे।

मुस्लिम साधना के अन्तर्गत मक्का, जिसे अल्लाह ने प्रतिष्ठित स्थान बनाया है (27:91) तथा जो दुनिया वालों के लिए बरकत तथा मार्ग-दर्शन का केन्द्र है (3:96) का निष्ठापूर्वक दर्शन मनःशुद्धि का हेतु है। वहां पहुँचकर, काबा में प्रवेश कर व्यक्ति सब ओर से निश्चित हो जाता है, उसे एक अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है। इसीलिए, काबा की यात्रा कर सकने की क्षमता रखने वाले प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म माना गया है कि वह हज्ज करे, 'सफ़ा' तथा 'मरवा' की पहाड़ियों के चक्कर लगाए: निस्संदेह 'सफ़ा' और 'मरवा' (की पहाड़ियाँ) अल्लाह की निशानियों में से हैं, तो जो कोई अल्लाह के घर (काबा)का हज्ज करे या उमरा करे, उसके लिए इसमें कोई दोष नहीं कि वह उनके बीच चक्कर लगाए (2:158)। इन पहाड़ियों का चक्कर लगाना, जिसे सई करना कहते हैं, हज्ज का ही एक अंग है। अल्लाह की इबादत का केन्द्र होने के कारण काबा में लड़ना हराम ठहरा दिया है (2:192)।

इस्लाम-धर्म में हज्ज़ के लिए 'ज़िलहिज्ज:' महीने की नवी तारीख़ उपयुक्त बतलाई गई है। उमरा किसी भी महीने की किसी भी तारीख़ को हो सकता है। अरब-निवासी इन महीनों का पर्याप्त आदर करते थे। 'कुरबानी' के बिना हज्ज अपूर्ण है। इसलिए विभिन्न स्थानों पर कहा गया है : और (कुरबानी के) ऊँटों को हमने तुम्हारे लिए अल्लाह की (भक्ति की) निशानियाँ ठहराया है तुम्हारे लिए उनमें भलाई है, सो उन पर अल्लाह का नाम लो एक पंक्ति में खड़ा करके, तो जब कुरबानी के बाद उनके पहलू (ज़मीन से) आ लगें, तो उनमें से स्वयं भी खाओ और सन्तोष से बैठे हुए को भी खिलाओ और मांगने वालों को भी (22:36)। कुरबानी अल्लाह तक व्यक्ति का 'तक़्वा' (भक्तिभावना) पहुँचाती है। इस्लाम-धर्म में कुरबानी को दास्य भावना तथा आत्मसमर्पण की सफल अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। कुरबानी की इस क्रिया के द्वारा मनुष्य जैसे यह प्रण करता है कि अल्लाह की राह में यदि प्राण की बलि की भी आवश्यकता हुई तो वह संकोच नहीं करेगा, आत्मार्पण कर देगा।

'कुरआन' में इस बात का आदेश है कि जब तक कुरबानी अपने स्थान तक न पहुँच जाए तब तक व्यक्ति सिर का मुंडन न कराए। अस्वस्थ व्यक्ति या वे लोग जो सिर में तकलीफ़ होने के कारण अपने सिर को पहले ही मुड़ा चुके हैं, इस नियम से मुक्त हैं। विशेष परिस्थितियों में भेंट का जानवर सुलभ न होने पर मस्जिदे हराम (काबा) से बहुत दूर रहने वाला व्यक्ति दस रोज़े का फिदय: अदाकर अल्लाह के अज़ाब से बच सकता है। हज्ज के सफ़र में 'रब का फ़ज़्ल' (रोज़ी) तलाश करने में कोई दोष नहीं है : और इसमें कोई दोष नहीं कि (हज्ज के सफ़र में) अपने रब का फ़जल तलाश करो (2:198) हाँ, मूलोद्देश्य विस्मृत नहीं होना चाहिए। इसीलिए, कहा गया है कि 'अरफ़ात' (मक्का से नौ मील दूर स्थित एक ऊँची,

जगह का नाम, जहां हज्ज करने वालों के लिए ठहरना आवश्यक है) पहुँचने के बाद गिनती के कुछ दिनों में अल्लाह को निरन्तर याद करते रहना फ़र्ज़ है। गिनती के दिनों से तात्पर्य 'ज़िल्हिज्जः' की नवीं तारीख से तेरहवीं तिथि के दिन हैं। यदि इबादतें (हज्ज सम्बन्धित नियमित कार्य) पहले ही पूरे हो जाएं तो गिनती के इन दिनों से पूर्व भी वापस लौटा जा सकता है। इस अवधि के समाप्त हो जाने के बाद भी वहाँ ठहरने में कोई हर्ज नहीं है : और गिनती के कुछ दिनों में अल्लाह को याद करो, फिर जो कोई दो ही दिन में जल्दी कर ले (और लौट आए) तो उस पर कोई गुनाह नहीं और (यदि) कोई ठहर जाए, तो उस पर भी कोई गुनाह नहीं, ये बातें तो उसके लिए हैं जो अल्लाह की अवज्ञा से बचता और उसकी नाखुशी से डरता हो (2:203)। इहराम (मक्का पहुँचने से पहले एक निश्चित स्थान पर फ़कीराना वस्त्र पहन लेने) के बाद हज्ज समाप्त न होने तक 'तलबिया!' (दुआ) का पढ़ा जाता रहना आवश्यक है। इस प्रकार हज्ज सम्बन्धी प्रत्येक कार्य के द्वारा व्यक्ति ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है तथा उसे निरन्तर स्मरण करते रहने का प्रयत्न करता है। परिणाम स्वरूप वह अल्लाह का कृपा-पात्र होकर आख़िरत के अज़ाब से बच जाता है। 'महाभारत में भी तीर्थ-दर्शन का यही फल बतलाया गया है। तीर्थ-स्नान से मनुष्य स्वयं तो मुक्त होता ही है, अपने कुल की सातवीं पीढ़ी तक को भी पवित्र कर देता है' (वन० पर्व० 84/1) इतना ही नहीं ब्रह्म सेवित तीर्थों के दर्शन से अग्निष्टोम तथा वाजपेय आदि यज्ञों का फल उसे अनायास ही मिल जाता है। (84/162)।

उपासना के इन चार रूपों के अतिरिक्त इस्लाम–धर्म में सदाचरण को भी साधना का ही एक अंग माना गया है। इस प्रसंग में विभिन्न विधि-निषेधों का सविस्तार वर्णन है। व्यर्थ रक्तपात मत

करो (2:84)। धांधलेबाजी से एक-दूसरे का माल मत खाओ, न घूस दो (2:188), भलाई करके एहसान न धरो, दिखावे से बचे (2:264) हृदय की संकीर्णता दूर करो (59:9, 64:16) शराब और जुआ, थान और पांसे गन्दे शैतानी काम हैं—इनसे बचो (5:90), दूसरे उपास्यों को बुरा मत कहो (6:108), यतीमों को मत दबाओ। (93:9), जो वादा करो, उस पर जमे रहो (13:20), बुराइयों को भलाई से दूर करो (23:96, 41:34) क्रोध आए तो क्षमाकर दो (42:37) आदि ऐसे अनेक आदेश कुरआन शरीफ़ में हैं, जिनका पालन किया जाना व्यक्ति के आत्मिक विकास के साथ ही सामाजिक सुव्यवस्था के लिए भी श्रेयस्कर है।

नारी का स्थान

विभिन्न धर्मों में नारी के प्रति विचित्र दृष्टिकोण रहा है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' (मनु स्मृति 3/56) की बात को स्वीकार करते हुए भी 'द्वारं किमेकं नरकस्य—नारी' तथा विश्वासपात्रं न किमस्ति—नारी, (मणिरत्नमाला—शंकराचार्य) कहकर अथवा 'तिय-छवि छायाग्राहिनी' बतलाकर उसकी निरन्तर निन्दा की जाती रही है। कभी उसे उग्र प्रकृति का कहा गया है, कभी ईर्ष्यालु बतलाया गया है। और कभी द्वेष-भावना में रत रहने वाली के रूप में चित्रित किया गया है। उसके बौद्धिक स्तर के सम्बन्ध में तो सदैव शंका की जाती रही है। महात्मा गौतम बुद्ध ने स्त्रियों के समानाधिकार के प्रश्न पर शिष्य आनन्द को सम्बोधित करते हुए कई स्थानों पर कहा है कि नारियाँ मूर्ख होती हैं, द्वेष की भावना उन्हें सदैवा अक्रान्त किए रहती हैं, शिशु के रुदन के समान क्रोध को, वे अपना सबसे बड़ा शस्त्र मानती हैं।[1]

और इसीलिए ही गौतमबुद्ध ने भिक्षुणियों के बौद्ध-मठों में प्रवेश पर रोक लगा दी थी। यद्यपि आगे चलकर इस नियम में कुछ शिथिलता आ गई थी भिक्षुणियों के रूप में नारी को दीक्षित भी किया जाने लगा था, किन्तु फिर भी उन्हें यह स्पष्ट आदेश था कि वे बौद्ध-भिक्षु के सम्मुख बैठ नहीं सकेगीं, आदर-प्रदर्शन के लिए निरन्तर हाथ जोड़े खड़ी रहेंगी। इस आदेश के पीछे नारियों के प्रति उपेक्षा की भावना ही विद्यमान है। इस भावना का प्रखर रूप, नारियों को हीन समझने की स्पष्ट घोषणा श्रुतियों में है। 'स्त्रीशूद्रोनाधीयाताम्' कहकर श्रुतियों ने स्त्रियों के पठन-पाठन तक

Women, Anand, are hot-tempered; women, Anand, are jealous; women, Anand, are envious; women, Anand, are stupid... Crying is the power of child, anger is the power of women."

1. Indian thought and its development page, 95.

को भी निषिद्ध घोषित कर दिया है। मनुस्मृति में स्त्री को माया बतलाया गया है, जो पुरुष की सिद्धि में बाधा डालती रहती है- वह विद्वानों को भी कुमार्गगामी बना देती है (2/214) मनुष्यों को दोष लगा देना उनका स्वभाव है। इसलिए मनुस्मृतिकार ने बुद्धिमान पुरुषों को स्त्रियों से सदैव सतर्क रहने की सलाह दी है—

स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्।
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।।

— 2/213

अर्थात्, इस संसार में यह स्वाभाविक ही है कि स्त्री-पुरुषों का परस्पर के संसर्ग से दूषण हो जाता है, अतएव विद्वान पुरुष स्त्रियों के विषय में असावधानी नहीं करते किन्तु सर्वदा उनसे अलग ही रहते हैं।

मनुस्मृति में एक स्थान पर नारी को 'अधन' कहा गया है। उसके द्वारा एकत्र द्रव्य पर उसके स्वामी का अधिकार होता है (8/416)। इस कथन में सम्पत्ति के अधिकार से उसे वंचित कर दिये जाने का संकेत है। महर्षि मनु ने नारी की विविध क्षेत्रस्थ स्वतन्त्रता का घोर विरोध किया है। 'न भजेत स्त्री स्वतन्त्रताम्' (5/148) अथवा 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' (9/3) कहकर उसे प्रत्येक अवस्था में पुरुष की अधीनता में ही रहने का अनुमोदन किया है। इतना ही नहीं, घर के कामों में भी उसकी स्वतन्त्रता अनुचित बतलाई है।[1]

नारियों के प्रति यह दृष्णिकोण केवल हिन्दू धर्म-ग्रन्थों अथवा मनीषियों का ही नहीं है, अन्य मतावलम्बी भी उन्हें प्राचीन काल से ही हीन दृष्टि से देखते रहे हैं। ऐथेन के ग्रीक, जिन्हें प्राचीन काल में अत्यन्त सभ्य होने का गौरव प्राप्त है, स्त्री को चल सम्पत्ति (Chettel) मात्र मानते थे। उसका क्रय-विक्रय उनकी दृष्टि में

---

1. बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किञ्चित्कार्यं गृहेष्वापि।। —5/147

कोई दोष नहीं था।[1] ईसाई मिशनरियों ने भी नारी को अत्यन्त-घृणा का पात्र माना है। उन्होंने उसे "नरक के द्वार" की संज्ञा दी है[2] तथा इस प्रकार उसके प्रति मानव के हृदय में जुगुप्सा का भाव जागृत करने की चेष्टा की है। रोम, मिस्र, सीरिया; ईराक़ तथा फ़ारस आदि देशों में भी नारियों के प्रति अच्छा दृष्टिकोण नहीं रहा है। इस्लाम पूर्व अरबवासियों के विचार तो उनके प्रति इतने संकीर्ण रहे हैं कि वे घर में कन्या की स्थिति तक को भी सहन नहीं कर सकते थे। इसीलिए ही उसके जन्म पर वे शोक मनाते थे; अपना अपमान समझकर उसे मार तक डालते थे। इन सभी देशों में बहुपत्नित्व (Polygamy) की प्रथा को सम्मत समझा जाता था।[3] स्पार्टा में बहुपत्नित्व के स्थान पर बहुपतित्व की प्रथा काफ़ी समय तक विद्यमान रही है। धर्म की मुहर लगी होने के कारण इस देश की स्त्रियाँ चार-चार, पाँच-पाँच पति रखने तक के लिए भी स्वतंत्र थीं।[4]

यूरोप के पश्चिमी भागों में, सामान्य जनता की कौन कहे, पादरी वर्ग, जिससे पूर्ण ब्रह्मचर्य की अपेक्षा की जाती थी; 'विशप' अथवा 'चर्च' के अध्यक्ष की आज्ञा से कई-कई उपपत्नियां (Left hand wife) रख सकता था।[5] हिब्रू जाति की बालिकाओं की

1. 'दि जेन्टिल एण्ड द जिउ (The Gentle and the jew) लेखक डेलिञ्जर (Dollinger Volume II, पृ० सं० 233-238)।
2. "...the devil's gateway, the Unsealer of the forbidden tree the deserter of the divine law, the destroyer of the God's image—man"—Tertullian.
3. दि जेण्टिल एण्ड दि जिऊ 405-406।
4. हिस्ट्री ऑफ़ ग्रीस, ग्रॉट, Vol. VI, PP. 136।
5. कान्स्टीट्यूश्नल हिस्ट्री ऑफ इंग्लैंड, ले० (Hallam), खण्ड 1, पृ० सं० 87 तथा मिडिल एजेज़, भाग 1, पृ० सं० 353।

स्थिति तो अत्यन्त दयनीय थी। वे अपने ही घर में दासी का-सा जीवन व्यतीत करती थीं। पिता के द्वारा वे बेची तक जा सकती थीं। पिता की मृत्यु हो जाने पर भाइयों की कृपा पर उन्हें निर्भर रहना पड़ता था। पुरुष उत्तराधिकारी के न होने पर ही वे सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त कर सकती थीं।

उक्त विवरण से अभिप्राय केवल इतना ही है कि मुहम्मद साहब के आविर्भाव से पूर्व समाज में नारियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, बहुपत्नीवाद की यन्त्रणा का वे शिकार बनी हुई थीं। सामाजिक असुरक्षा ने उन्हें सर्वथा ग्रस रखा था। विवाह के अस्थायी अनुबन्धों (Temporary Contracts of marriage) नें नैतिक मान्यताओं तक को दूषित कर दिया था। ऐसी दशा में, 'कुरआन' सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर अवतरित हुआ। उसने नारियों के समानाधिकार के प्रश्न को ऊपर उठाया, सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हुए उनकी स्थिति को सुदृढ़ किया तथा इस प्रकार दाम्पत्य-जीवन को समरस बनाने का प्रयत्न किया।

'नारी के प्रति आदर की भावना' इस्लाम-धर्म की प्रमुख शिक्षा है, इस शिक्षा का व्यक्त रूप 'ख़ातून-ए-जन्नत' (The lady of Paradise), फ़ातिमज़्ज़हरा' (our lady of light) आदि शब्दों में दिखलाई देता है, जिनका प्रयोग तत्कालीन मुस्लिम-समाज द्वारा मुहम्मद साहब की सुपुत्री के लिए किया गया है। ये शब्द नारी-समाज की समस्त पवित्रता तथा सर्वोच्च उदात्त भावनाओं के निर्देशक हैं 'कुरआन' में स्थान-स्थान पर समानाधिकार की घोषणा है। स्त्रियों का हक़ पुरुषों के बराबर है। वे किसी भी दशा में उनसे न्यून नहीं हैं : और उन (स्त्रियों) का भी सामान्य नियम के अनुसार (पुरुषों पर) वैसा ही हक़ है जैसाकि

(पुरुषों का) उन पर है (2:228)। उनकी सम्पत्ति पर किसी भी दशा में पुरुष का अधिकार उचित नहीं है। जिसकी कमाई है, उस पर उसी का स्वत्व न्यायसंगत भी है- पुरुषों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है, और स्त्रियों ने जो कुछ कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है (4:32)। इतना ही नहीं, माता-पिता तथा नातेदारों की सम्पत्ति का हिस्सा भी प्राप्त करने की वे अधिकारिणी हैं (4:7)। इस सम्पत्ति का कितना भाग उन्हें मिलेगा, यह परिस्थितियों पर निर्भर है।

इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था दृष्टव्य है—"अल्लाह तुम्हारी औलाद के बारे में तुम्हें वसीयत करता है : पुरुष का (हिस्सा) दो स्त्रियों के हिस्से के लिए बराबर हो, यदि केवल दो से अधिक लड़कियाँ हों, तो उनका (हिस्सा) उस माल का दो तिहाई है,जो (मरने वाले ने) छोड़ा हो और यदि एक ही (लड़की) हो तो उसका आधा है।

यदि उसके औलाद हों तो उसके-माता-पिता में से हर एक का उसके छोड़े हुए (माल) का छठा भाग है; और यदि उसके औलाद न हो और उसके माता-पिता (ही) उसके वारिस हों, तो उसकी माता का (हिस्सा) तिहाई होगा; और यदि उस (मरने वाले) के भाई बहन हों, तो उसकी माता का (हिस्सा) छठा होगा।

और तुम्हारी पत्नियों ने जो कुछ छोड़ा हो उसमें तुम्हारा आधा (हिस्सा) है, यदि उनके औलाद न हो; यदि उनके औलाद हों तो तुम्हारा चौथाई (हिस्सा) होगा.... और जो कुछ तुम छोड़ जाओ उसमें उनका (हिस्सा) चौथाई होगा यदि तुम्हारे कोई औलाद नहीं है, परन्तु यदि तुम्हारे औलाद है, तो उनका (हिस्सा) आठवाँ होगा।

और यदि ऐसा हो कि किसी पुरुष या स्त्री के न तो औलाद हो और न उसके माता-पिता ही (जीवित) हों, और उसके एक भाई या बहन हो, तो उन दोनों में से प्रत्येक का छठा (हिस्सा) होगा, और यदि वे (भाई बहन) इससे अधिक हों, तो फिर एक तिहाई में वे सब शरीक होंगे।" (4:11-12)

अन्तिम आयत में भाई-बहनों से तात्पर्य माता की ओर से मरने वाले के भाई-बहनों से है, जिनका पिता दूसरा हो। सगे भाई-बहन तथा ऐसे सौतेले भाई-बहन, बाप के सम्बन्ध से जिनका मरने वाले के साथ नाता हो, के सम्बन्ध में निम्नलिखित आदेश है– (हे नबी!) लोग तुमसे (ऐसे व्यक्ति के बारे में ज़िसके न तो माता-पिता मौजूद हों और न कोई औलाद हो) हुक्म मालूम करना चाहते हैं। कह दो : अल्लाह तुम्हें ऐसे व्यक्ति के बारे में जिसके न औलाद हो और न माता-पिता, हुक्म देता है– यदि कोई मर जाये जिसके औलाद न हो (न माता-पिता ही हों) और उसके एक बहन हो, तो जो कुछ उसने छोड़ा है उसका आधा उस (बहन) का होगा और वह (अपनी) उस (बहन) का वारिस होगा यदि (वह बहन मर जाए और उसके कोई औलाद न हो। यदि दो बहने हों (या दो से अधिक), तो जो कुछ उसने छोड़ा है उसमें से उनका दो तिहाई होगा और यदि कई भाई-बहन पुरुष और स्त्रियाँ हैं तो एक पुरुष का हिस्सा दो स्त्रियों के बराबर होगा (4:177)। सम्पत्ति का यह विभाजन मरने वाले की वसीयत निपटाने या क़र्ज़, यदि कोई है, तो उसे चुकाने के बाद ही किए जाने का आदेश है। उक्त विवरण से यह सर्वथा स्पष्ट है कि स्त्रियों के सम्पत्ति-संबंधी अधिकार पर 'मुस्लिम कोड' द्वारा धर्म की मुहर लगा दी गई, इस व्यवस्था की उपेक्षा अनुचित तथा अधार्मिक मानी जाने लगी। हाँ, सामाजिक

सुव्यवस्था के लिए, पारिवारिक जीवन में पुरुष का संरक्षण आवश्यक बतलाया गया है। पुरुष ही आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, परिवार के सदस्यों के पालन-पोषण का दायित्व उसी पर है, इसीलिए ही, उसकी हैसियत एक सरपरस्त की-सी स्वीकार की गई है। 'पुरुषों को उनपर एक दर्जा (प्राप्त) है (2:228) अथवा 'पुरुष स्त्रियों से सिरधरे हैं। इसलिए कि अल्लाह ने एक को दूसरे पर बड़ाई दी है और इसलिए भी कि उन्होंने (अर्थात् पुरुषों ने) अपने माल (उनपर) ख़र्च किए हैं (4:34) आदि कथनों में इसी तथ्य का संकेत है। अपनी स्वाभाविक शक्ति के कारण ही पुरुष को यह पद प्राप्त है। इसलिए उसके संरक्षण में रहना नारी के लिए कोई अपमान की बात नहीं है, बल्कि इसी में स्त्री के स्त्रीत्व का रहस्य निहित है।

हज़रत मुहम्मद साहब ने तत्कालीन विभिन्न वर्गों में प्रचलित बहुपत्नित्व की प्रथा का पूर्ण रूप से निषेध तो नहीं किया है, अधिक से अधिक चार विवाह करने का आदेश देकर समाज पर अंकुश अवश्य लगा दिया है। इस आदेश के पीछे यतीमों (अनाथों) के प्रति न्यायपरक दृष्टिकोण ही विशेष है : और यदि तुम्हें इस बात का भय हो कि यतीमों के साथ न्याय न कर सकोगे तो स्त्रियों में से जो तुम्हारे लिए जायज़ हो। दो-दो, तीन-तीन, चार-चार से विवाह कर लो (4:3)। किन्तु, इसके लिए एक आवश्यक शर्त रख दी गई है और वह यह कि उनमें से प्रत्येक के साथ पुरुष को समता का व्यवहार करना होगा यदि वह यह समझता है कि ऐसा सम्भव नहीं है तो फिर एक ही विवाह उसके लिए ठीक है : परन्तु यदि तुम्हें भय हो कि उनके साथ समता का व्यवहार न कर सकोगे तो फिर एक ही से (विवाह करो), एक विवाह के द्वारा ज़्यादती से बचे रहने की अधिक सम्भावना है (4:3)। उक्त उद्धरण में समता के लिए मूल

रूप से 'अद्ल' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ भोजन, वस्त्र आदि अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में ही समानता से नहीं है वरन् प्रेम तथा आदर आदि हृदयगत भावनाओं की समता से भी उसका तात्पर्य है। यह स्थिति, जिसमें सभी के प्रति हृदय का एक ही जैसा भाव बना रहे, सर्वथा असम्भव है। 'कुरआन' में इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए कहा गया है : चाहे तुम कितना ही चाहो, तुम स्त्रियों के बीच पूर्ण रूप से न्याय नहीं कर सकते तो ऐसा भी न करना कि एक ही ओर बिल्कुल झुक जाओ और दूसरी को इस तरह छोड़ दो जैसे कोई अधर में लटकी हो (4:129)।

स्त्री तथा पुरुष के सम्बन्ध पर भी 'कुरआन' में विस्तार के साथ उल्लेख है। इस उल्लेख के अनुसार दोनों का सम्बन्ध एक-दूसरे के प्रति शरीर तथा कपड़े जैसा है: वे तुम्हारे लिए वस्त्र (के समान) हैं और तुम उनके लिए वस्त्र (के समान) हो (2:187) अर्थात् दोनों एक-दूसरे की शोभा है, उनमें चोली-दामन का साथ है तथा दोनों ही एक-दूसरे के लिए शांति तथा आश्वासन का कारण हैं। अल्लाह ने स्त्री तथा पुरुषों के जोड़े पैदा ही इसलिए किए हैं जिससे कि अनुकूलता बनी रहे दोनों एक-दूसरे से आराम और चैन पा सकें। इसके लिए पारस्परिक प्रेम और सौहार्द की भावना आवश्यक है— उसने तुम्हारे लिए स्वयं तुम ही में से जोड़े पैदा किए, ताकि तुम उनके पास आराम और चैन पाओ और तुम्हारे बीच प्रेम और दयालुता रख दी (30:21) वास्तव में, स्त्री तथा पुरुष दोनों ही एक-दूसरे की मनोवस्था तथा प्राकृतिक प्रेरणाओं का एक-दूसरे के प्रति पूर्ण उत्तर हैं। सभ्यता और संस्कृति की सुघड़ कल्पना के लिए, सृष्टि के सम्यक्-विकास के लिए दोनों का एक-दूसरे के साथ भले तरीके से जीवन बिताना आवश्यक है: और

तुम उनके साथ भले तरीक़े से रहो (4:19)। नापसन्दगी की दशा में भी यह तरीक़ा नहीं छोड़ना चाहिए। सच तो यह है कि बलपूर्वक औरतों के वारिस बन बैठना (4:19), उन्हें तंग करना (65:6), सताने के लिए ही निकाह में रखना अनुचित है (2:231)। जहां तक हो सके, आपसी सम्बन्धों में उदारता को हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। मतभेदों के अत्यधिक बढ़ जाने पर भी प्रयत्न यही करना चाहिए कि अलगाव की नौबत न आए, समझौता करके मेल-मिलाप कर लेना ही उचित है: और यदि किसी स्त्री को अपने पति की ओर से बुरे बर्ताव, या बेरुख़ी का भय हो, तो इसमें उनके लिए कोई दोष नहीं कि वे दोनों आपस में समझौता करके मेल-मिलाप कर लें (4:128) क्योंकि मेल-मिलाप उत्तम होता है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो पंच का तरीक़ा अपनाना चाहिए। पति के नातेदारों में से एक व्यक्ति पंच तथा स्त्री के नातेदारों में एक व्यक्ति पंच की नियुक्ति से, सम्भव है आपसी मतभेद दूर हो जाएं : और यदि तुम्हें उन (पति-पत्नी) के बीच बिगाड़ का डर हो, तो एक पंच पुरुष के लोगों में से और एक स्त्री के लोगों में से नियुक्त करो, यदि वे दोनों सुधार चाहेंगे तो अल्लाह दोनों में बनाव और एकता पैदा कर देगा (4:35)। इसके लिए समझौते की इच्छा आवश्यक है। तलाक़ तो बिल्कुल अन्तिम उपाय है। इस उपाय के अपनाने वाले को भी यह ध्यान रखना चाहिए कि पत्नी को दिए गए धन (महर) में से कुछ भी वापस न ले। अन्यथा वह 'झूठा आरोप लगाने वाला' तथा 'खुले गुनाह का भागी' होगा: और यदि तुम एक पत्नी को छोड़कर उसकी जगह दूसरी पत्नी लाना चाहो तो चाहे तुमने उनमें से एक को ढेर-सारा माल दिया हो, उसमें से कुछ न लेना, क्या तुम उस पर झूठा आरोप लगाकर और खुले गुनाह का भागी बनकर उसे लोगे? और तुम उस (माल) को किस तरह ले सकते हो जबकि तुम एक-दूसरे तक पहुंच चुके हो (अर्थात् सम्भोग कर चुके हो), और वे

तुमसे पक्का इकरार भी ले चुकी हैं (4;20, 21)

इस्लाम-धर्म में तलाक़ देने का अधिकार पुरुषों तक ही सीमित नहीं है। परिस्थति-विशेष में स्त्री को भी 'खुलअ' का हक़ है। वह पति को कुछ देकर छुटकारा प्राप्त कर सकती है। बदले के रूप में स्त्री में तभी धन-ग्रहण किया जा सकता है जब तलाक़ का कारण पति की ज़्यादती या अन्याय न हो। 'खुलअ' पति की सहमति से ही हो सकता है। तलाक़ हो जाने के बाद भी 'इद्दत' (निश्चित समय) की अवधि में स्त्रियों को पति के घर में ही रहने का आदेश है। यह आदेश केवल इसीलिए ही है कि शायद साथ-साथ रहने से मेल-मिलाप की कोई सूरत निकल आए। तलाक़ पाई हुई स्त्रियों की तीन माहवारी आने तक, गर्भवती स्त्रियों की इद्दत शिशु-प्रसव तक, वृद्धाओं तथा उन बालिकाओं की, जो अभी रजवती नहीं हुई हैं, इद्दत तीन महीने तक निश्चित की गई है। इस अवधि में ये स्त्रियां पुनर्विवाह नहीं कर सकतीं हैं। (2:225-230)। इसके बाद उन्हें रोकना उचित नहीं है : और जब तुम स्त्रियों को तलाक़ दे दो, और वह जब अपने नियत समय (इद्दत) को पहुंचें, तो या तो सामान्य नियम के अनुसार रोक लो (अर्थात् समझौता कर लो) या फिर सामान्य नियम के अनुसार रुख़्सत कर दो. उन्हें सताने के लिए न रोको कि उन पर ज़्यादती करो। (2:231) इद्दत पूरी कर लेने के बाद स्त्री पुनर्विवाह के लिए स्वतंत्र है। दूसरे पति के द्वारा छोड़े जाने पर वह पूर्व पति से भी विवाह कर सकती है। आचार्य कौटिल्य ने 'अर्थ-शास्त्र' के 'धर्मस्थीय विवाह संयुक्त' प्रकरण में 'मोक्ष' की विभिन्न परिस्थितियों में आज्ञा दी है—

"वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्या चाकांक्षेत् वंशबिन्दुम्, द्वादश कन्या-प्रसविनीम्। ततः पुत्रार्थी द्वितीया विन्देत्।।"

अर्थात्, जो स्त्री वन्ध्या हो, उसका पुरुष आठ वर्ष तक संतान होने की प्रतीक्षा करे। यदि वह मृत पुत्रों का प्रसव करती हो तो दस वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि कन्या ही उत्पन्न करती हो तो बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् चाहे तो पुत्र की कामना से द्वितीय विवाह कर ले।

स्त्री के अधिकार की घोषणा भी उसी अध्याय के अन्त में है—

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राज किल्विषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीवोऽपिवा पतिः।।

अर्थात्, स्त्री नीच, परदेश में ही निरन्तर रहने वाले, राजद्रोही, प्राणहन्ता, पतित तथा क्लीव (नपुंसक) पति को त्याग सकती है।

इस्लाम-धर्म में विधवा-विवाह का भी समर्थन है। इस क्रम में कहा गया है: तुममें जो एकाकी हों और तुम्हारे गुलामों और लौंडियों में जो नेक हों, उनका विवाह कर दो (24:32) विधवाओं के लिए चार महीने दस दिन की इद्दत ठहराई गई है। इस अवधि के बाद उनका विवाह कर दिया जाना सामाजिक सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है। हिन्दू-धर्म-ग्रन्थ इस विधान के सर्वथा विपरीत हैं। उनके अनुसार पति के मरने के पश्चात् भी पर पुरुष का नाम न लेना ही स्त्री का धर्म है—

कामं तु क्षपयेद् दहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।
न तु नामापि गृहेणीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु।।

—मनुस्मृति 5/157

इस प्रकार, ब्रह्मचर्य का पालन उसका सबसे बड़ा व्रंत ठहराया गया है। इस व्रत का पालन करने वाली स्त्री बिना पुत्र के ही स्वर्ग प्राप्त कर लेती है—

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्राऽपि यथा ते ब्रह्मचारिणः।।

—मनुस्मृति, 5/160

जहां तक विधवा के भरण-पोषण का प्रश्न है, उत्तम गृहणियों से प्राप्त वृत्ति को उसकी जीविका का साधन माना गया है। 'भविष्यपुराण' में आदर्श गृहिणी का यह कर्तव्य बतलाया गया है कि वह कपास, रेशम तथा ऊन की कताई कानी, अंधी, लूली तथा विधवा स्त्रियों से प्रेमपूर्वक करवावे तथा इस प्रकार वृत्ति प्रदान कर उनके भरण-पोषण का साधन जुटावे—

कार्पासकृमिकौशेयौर्णकक्षौमादिकर्तनम्।
कुणिपंड्वन्ध योषाभिर्विधवाभिश्च कारयेत्।।

—अध्याय 12, श्लोक संख्या 18

इस प्रकार यह आक्षेप कि विधवाओं के सम्मुख भिक्षा मांगकर उदर-पोषण के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है, निरर्थक सिद्ध हो जाता है। नारद तथा पराशर आदि बाद के कुछ विचारकों ने विशेष परिस्थितियों में 'पुनर्लग्न' को सम्मत बतलाया है। इन परिस्थितियों का निर्देश इस प्रकार है—

अपत्यार्थम् स्त्रियः सृष्टाः स्त्रीक्षेत्रं बीजिनो नराः।
क्षेत्रं बीजवते देयं नाबीजी क्षत्रमर्हति।।

—नारद

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्य विधीयते।।

—पराशर

इन उक्तियों में विधवा-विवाह का समर्थन है।

पति की नपुंसकता की स्थिति में, पति के गत हो जाने पर अथवा

उसके द्वारा सन्यास ले लेने पर नारी पुनर्विवाह कर सकती है।

इस्लाम-धर्म में वेश्या-वृत्ति को भी निषिद्ध घोषित किया गया है। सांसारिक जीवन का लाभ प्राप्त करने के लिए दासियों को दुश्चरित्रता के लिए विवश करने की प्रथा का निषेध करते हुए कहा गया है : और अपनी लौंडियों को सांसारिक जीवन का लाभ प्राप्त करने के लिए दुश्चरित्रता पर विवश मत करो जबकि वे सतवन्ती (और विवाहिता होकर) रहना चाहती हों (24:33)। इसके आगे यह भी कहा गया है कि जो कोई उन्हें इसके लिए विवश करेगा, अल्लाह का अज़ाब निस्संदेह उस पर टूटेगा, वह किसी भी दशा में उसकी 'कड़ी पकड़' से बच नहीं सकता है। 'क़ुरआन में दुश्चरित्रता के लिए 'बिग़ा' शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शब्द का सामान्य अर्थ व्यभिचार है। अबू उबैद आदि कुछ टीकाकारों ने इस शब्द को 'मुतअ्' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ बतलाया है। अरब में, प्राचीनकाल में 'मुतअ्' की प्रथा प्रचलित थी। इसके अनुसार, अरबवासी अपनी लौंडियों को 'मुतअ्' के लिए देते थे और बदले में धन (मह्र) ले लिया करते थे। यह उनकी आमदनी का एक साधन था। इस प्रवृत्ति से समाज में 'बदकारी' और चोरी छिपे आशनाई की प्रवृत्ति' फैल रही थी। इस्लाम-धर्म ने मद्यपान की भांति इसे भी वर्जित कर दिया है तथा इस प्रकार 'मुतअ्' को निषिद्ध बतलाकर वेश्यावृत्ति का उन्मूलन किया है। इसी क्रम में यह भी बतलाया गया है कि ज़िना (व्यभिचार) अश्लील कर्म है। भूलकर भी उसके क़रीब नहीं जाना चाहिए : ज़िना के क़रीब न फटको, वह एक अश्लील कर्म और बुरी राह है (17:32)।

क़ुरआन में स्त्रियों के आचरण की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है। इस क्रम में यह बतलाया गया है कि इन्द्रियों को वश में रखना स्त्री का सबसे बड़ा गुण है। नबी सल्ल० के कथनानुसार समस्त इन्द्रियां व्यभिचार का हेतु हैं। देखना आंखों का व्यभिचार है, लगावट

की बातचीत जिह्वा का व्यभिचार है, हाथ लगाना और अनुचित उद्देश्य से चलना-फिरना हाथ-पांव का व्यभिचार है। 'बदकारी' की ये समस्त प्रारम्भिक बातें पूरी हो चुकने पर शर्मगाहें (गुप्तांग) या तो इसकी पूर्ति कर देती है या पूर्ति करने से रह जाती है। हिन्दू धर्मशास्त्र भी पर-स्त्री गमन की घोर निन्दा करते हुए 'मातृवतपरदारेषु' की व्यवस्था देते हैं। पुरुष को अपनी विवाहिता स्त्री से ही मैथुन करना धर्म सम्मत है। यह मैथुन आठ प्रकार का कहा गया है–

श्रवणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षण गुह्याभाषणम्।
शंकल्पोSध्यवसायश्च कार्यनिष्पत्तिरेव च।।

अर्थात्, परस्त्री सम्बन्धित चर्चा सुनना, कहना, केलि करना, देखना, गुप्त बात करना, संकल्प करना, प्रयत्न करना तथा अंग-संग करना ये आठ प्रकार के मैथुन हैं। हिन्दू शास्त्र विधि के अनुसार इस प्रकार पर स्त्री का स्मरण मात्र भी त्याज्य है। स्त्रियों को निगाहें नीची रखने का आदेश देते हुए कुरआन में आगे कहा गया है कि वे अपनी शर्मगाहों की सदैव रक्षा करें, अंग प्रदर्शन न करें तथा हर एक को अपना श्रृंगार न दिखलाएं: और (हे नबी!) ईमान वाली स्त्रियों से कहो कि वे अपनी निगाहें नीची रखें और अपनी शर्मगाहों की रक्षा करें, और अपना श्रृंगार न दिखलायें सिवाय उसके जो उसमें से ज़ाहिर रहे, और अपने सीनों पर अपनी ओढ़नियों का आंचल डाले रहें... और वे अपने पांव भूमि पर मारती हुई न चलें कि अपना जो श्रृंगार छिपा रखा हो लोगों को उसकी ख़बर हो जाए (24:31)। निगाहें नीची करके चलना ही स्त्री का सबसे बड़ा आभूषण है। ऋग्वेद के निम्नलिखित मन्त्र में भी स्त्री को इसी प्रकार का आदेश दिया गया है–

अधः पशस्व मोपारि सन्तरां पादकोहर।
मात कशप्लकौ दृशन्त्स्त्री ही ब्रह्मव भूविथ।।

(8:33-11)

अर्थात्, साध्वी नारी! तुम नीचे देखा करो, पैरों को परस्पर मिलाये रखो, वस्त्र इस प्रकार पहनो जिससे तुम्हारे ओष्ठ तथा कटि के नीचे के भाग पर किसी की दृष्टि न पड़े। 'कुरआन' में, औरतों की सुशीलता और शालीनता पर विशेष बल दिया गया है। पर्दे में रहने वाली स्त्री अनेक दोषों से बची रहती है। अतएव, कहा गया है कि वे (सामने आकर) अपना श्रृंगार किसी पर ज़ाहिर न करें सिवाय अपने पति के या अपने पिता के या अपने पति के पिता के, या अपने बेटों के या अपने पति के बेटों के, या अपने भाई के या अपने भाइयों के बेटों के या अपनी बहनों के बेटों के या अपनी (परिचित) स्त्रियों के, या जिन पर उन्हें स्वामित्व का अधिकार प्राप्त हो, उनके या उन अधीन पुरुषों (नौकर-चाकर) के जो कोई (और) प्रयोजन न रखते हों या उन बच्चों के जो स्त्रियों की छिपी बातों से परिचित न हों (24:31; 33;55)। ऊपर जिनका वर्णन किया गया है, उन्हें छोड़कर शेष अन्य नातेदारों से, जिनसे विवाह हो सकता है, परदा आवश्यक बतलाया गया है। संस्कृत नाटकों में 'अवगुण्ठनवती' शब्द का प्रयोग हिन्दू-नारी-समाज में प्रचलित पर्दा-प्रथा की स्वतः पुष्टि है। इसी क्रम में, 'कुरआन' में आगे आदेश देते हुए कहा गया है: और अपने घरों में रहो, और भूतपूर्व अज्ञानकाल की सज-धज न दिखाती फिरो (33:33)। इस आयत से प्रतीत होता है कि इस्लाम-धर्म घर को ही स्त्री का कार्य-क्षेत्र मानता है। वास्तव में अपने घर की देखभाल करना तथा बच्चों का उचित रूप से पालन-पोषण करना ही स्त्री का प्रधानधर्म है। इसीलिए नबी सल्ल० ने कहा है, "स्त्री छिपी रहने के योग्य चीज़ है। जब वह निकलती है तो उसे शैतान ताकता है; अल्लाह की दयालुता से अधिक निकट वह उस समय रहती है,जबकि वह अपने घर में हो।" उसके गृहिणी तथा गृहलक्ष्मी होने का सम्भवतः यही रहस्य है। 'श्रीमद्भागवत्' में भी कुलवती साध्वी स्त्रियों का कर्तव्य इस प्रकार बतलाया गया है— वे अपने घर को

झाड़-बहार कर तथा लीप-पोत कर निरंतर सुन्दर रखें; समस्त घर की सामग्रियां अपने स्थान पर जमा दें, जिससे काम पड़ने पर उसके मिलने में कोई अड़चन न उठानी पड़े; रसोई की सामग्रियों को साफ़ सुथरी एवं ढकी रखें; पति की इच्छाओं की पूर्ति समय के अनुसार करती रहें; विनम्रता, इन्द्रिय-संयम सत्यता एवं मधुरवाणी से प्रेम सहित पति को प्रसन्न करती रहें; जो कुछ भी मिले उसी में तृप्त रहें, अन्य वस्तुओं को देखकर लालायित न होवें, सभी विषयों में चतुरता तथा धार्मिकता धारण करें–

संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः।
स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा।।
कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च।
वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम्।।
सन्तुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रिय सत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत्।।

श्रीमद्भागवत्, स्कन्ध 7, अध्याय 11, श्लोक सं० 26-28

'भविष्यपुराण में भी गृहलक्ष्मियों' के लिए यह आदेश है कि वे अवकाश के समय नित्य कार्य में बाधा न डालते हुए सूत काता करें–

कर्मणामन्तरालेषु पोषिते चापि भर्तरि।
स्वयं वै तदनुष्ठेयं नित्यानां जाविरोधतः।।

अध्याय 12, श्लोक संख्या 20

इस प्रकार घर ही स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र है। आवश्यकता पड़ने पर, यदि उन्हें घर से बाहर निकलना ही पड़े तो वे अपनी चादर अच्छी तरह ओढ़कर उसका एक हिस्सा अथवा पल्लू अपने ऊपर से लटका लें, ताकि उनके सिर और चेहरे छिपे रहें और तभी घर से बाहर निकलें: हे नबी! अपनी पत्नियों और अपनी बेटियों और ईमान

वाली स्त्रियों से कह दो कि वे (बाहर निकलें तो) अपने ऊपर चादरों के पल्लू लटका लिया करें, इसमें इस बात की अधिक सम्भावना है कि वे पहचान ली जाएं (अर्थात् वे सदाचारिणी और कुलीन स्त्रियां हैं— इस बात को लोग जान लें) और सताई न जाएं (33:59)। 'कुरआन' की ये आयतें नारी के अभीष्ट गुण पर बल देती हैं। इनके अनुसार, नारी का अभीष्ट गुण पति-सेवा है। परहेज़गार स्त्रियों के लिए तो यहां तक कहा गया है कि किसी पुरुष से बात करने की आवश्यकता आ पड़ने पर वे इस ढंग से न बोलें कि जिससे सुनने वाले को उनकी बातों में किसी भी तरह का लोच या लगावट का एहसास हो। उन्हें जान-बूझकर न तो स्वर में कोमलता ही आने देनी चाहिए और न माधुर्य ही।अपनी वाणी के द्वारा सुनने वाले के मन में विकृत अथवा लोलुप भावना कदापि नहीं उत्पन्न होने देना चाहिए : यदि तुम परहेज़गार रहना चाहती हो, तो दबी ज़बान से बात न किया करो कि वह व्यक्ति जिसके दिल में रोग हो, लालच में पड़ जाये, बल्कि साफ़-सीधी बात करो (32:32)। भाव यह है कि स्त्री के लिए बोलने में सावधनी बरतना परमावश्यक है। पर्दे के समान ही उसके लिए यह भी ज़रूरी है कि वह बिना ज़रूरत आवाज़ किसी दूसरे को न सुनाये। इसीलिए, स्त्री को मस्जिद में अज़ान देने की आज्ञा नहीं है। 'कुरआन' में ऐसी स्त्रियों की कई स्थानों पर प्रशंसा की गई है, जो ईमान वाली हैं। अल्लाह ने इनके लिए— अपनी शर्मगाहों की हिफाज़त करने वाली स्त्रियों के लिए— क्षमा और बड़ा बदला तैयार कर रखा है (33:25)। उनकी इबादत में वह मिठास पैदा कर देता है। (मुसनद अहमद) उन्हें ऐसा ईमान प्रदान करता है, जिसकी मिठास से उनके हृदय प्रफुल्लित हो उठते हैं (तबरानी), इस लोक का स्थायी तथा यथार्थ आनन्द अनायास ही उन्हें उपलब्ध हो जाता है— आदि अनेक उल्लेखों में स्त्री की पवित्रता का अभिनन्दन है। उसकी इस पवित्रता को सन्देह की दृष्टि से देखने वालों को, ईमानवाली स्त्रियों

पर अकारण दोषारोपण करने वालों को चेतावनी देते हुए स्पष्ट घोषणा की गई है : जो लोग ईमान वाली स्त्रियों को बिना इसके कि उन्होंने कुछ किया हो (तोहमत लगाकर) दु:ख पहुचाते हैं, उन्होंने झूठी तोहमत और प्रत्यक्ष गुनाह का बोझ (अपने सिर) उठा लिया (33:58), जो लोग सतवन्ती, बेख़बर (अर्थात् पाक-साफ, बदचलनी की बातों से बेख़बर) ईमानवाली स्त्रियों पर झूठा कलंक लगाते हैं उन पर दुनिया और आख़िरत में लानत (धिक्कार) की गई, यह उनके लिए बड़ा अज़ाब है। (24:23) तथा इस प्रकार सच्चरित्र स्त्रियों के प्रति आदर की भावना व्यक्त की गई है।

'कुरआन' में गृहस्थ-धर्म की कुछ बातों का भी उल्लेख है। इस पवित्र धर्म-ग्रन्थ में स्त्रियों के मासिक-धर्म को एक गन्दगी बतलाया गया है। अतएव, आदेश दिया गया है कि उस स्थिति में पुरुष उनके निकट न जाएं तुममें से स्त्रियों की माहवारी (मासिक-धर्म) के बारे में पूछते हैं, कहो: वह एक गन्दगी (की हालत) है, महावारी के दिनों में स्त्रियों से अलग रहो और जब तक वे पाक-साफ़ न हो जाएं उनके पास (संभोग के लिए) न जाओ (2:222)। महर्षि मनु ने भी इसी प्रकार का आदेश दिया है।

नोपगच्छेत्प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह।। 4/40

अर्थात्, व्यक्ति कामातुर होने पर भी अपनी स्त्री से जब तक वह रजस्वला है, न तो प्रसंग ही करे और न एक शैया पर शयन करे। इससे 'प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते' (4/41) प्रज्ञा, तेज, बल तथा आयु-सबका नाश हो जाता है। आयत में इन कार्यों को गर्हित, अप्राकृतिक तथा शैतानी काम बतलाया गया है : जिसपर अल्लाह ने लानत की है उस शैतान ने अल्लहा से कहा था : मैं तेरे बन्दों में से एक निश्चित भाग लेकर रहूँगा, उन्हें बहकाऊंगा, उन्हें (झूठी) आशाएं

दिलाऊगा, मैं उन्हें हुक्म दूंगा तो वे जानवरों के कान फाड़ेंगे (और उन्हें अपने देवताओं के नाम पर छोड़ेंगे) और मैं उन्हें हुक्म दूँगा तो वे अल्लाह की रचना में भी परिवर्तन करेंगे (4:118)। यहां अल्लाह की रचना में परिवर्तन करने से तात्पर्य उन कार्यों में से है जो प्रकृति के सर्वथा प्रतिकूल हैं तथा जिनसे प्रकृति के उद्देश्यों की पूर्ति असम्भव है। इनमें आजीवन ब्रह्मचर्यादि सभी काम आ जाते हैं, जिन्हें मनुष्य ने प्राकृतिक नियमों को भंग करके अपनाया है।

उक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि, 'क़ुरआन' में नारी को काफी ऊंचा स्थान प्रदान किया गया है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व ही उसके लिए जिन अधिकारों की इस धर्मग्रन्थ में घोषणा की जा चुकी है, वर्तमान ग़ैर-मुस्लिम नारी को वे आज भी उपलब्ध नहीं है। वास्तव में 'मुस्लिम कोड' ने मुस्लिम नारी की स्थिति को—सम्पत्ति तथा व्यक्तित्व सुरक्षादि विभिन्न अधिकार प्रदान कर— काफ़ी सुदृढ़ बना दिया है। वे अब परोपजीवी नहीं हैं, स्वत्व की स्वयं स्वामिनी हैं। उनकी वर्तमान स्थिति का सय्यद अमीर अली के निम्नलिखित उद्धरण में सुन्दर संकेत हैं—

"As long as she is unmarried, she remains under the parental roof, and until she attains her majoraty she is, to some extent, under the control of the father or his representative. As soon as, however, as she is of age, the law vests in her all the rights which belong to her as an independent human being. She is entitled to share in the inheritance of her parents along with her brothers, and though the proportion is different, the distinction is founded on the relative position of brother and sister. A woman who is SUIJURIS. Can under no circumstances be married

without here own express consent. On her marriage she does not lose her individuality. She Does not cease to be a separate member of socity."

दि स्प्रिट आफ़ इस्लाम, पृष्ठ संख्या 256

"जब तक स्त्री अविवाहित है, वह मां-बाप के अधीन रहती है और जब तक वह वयस्क हो जाती है तो कुछ हद तक वह पिता या उसके प्रतिनिधि के नियंत्रण में आ जाती है। जैसे ही वह प्रौढ़ होती है, क़ानून उससे संबन्धित तमाम अधिकार उसे प्रदान कर देता है, जो एंक स्वतन्त्र मानव से संबन्ध रखते हैं। वह अपने माता-पिता की विरासत में अपने भाईयों के साथ हिस्सा लेने की अधिकारी हो जाती है और अनुपात में भिन्नता के बावजूद भाई-बहन के रिश्ते में उसका अपना एक सुनिश्चित स्थान नियत हो जाता है। एक स्त्री का, जो कि 'स्वाधीन' है, किसी भी दशा में उसकी अपनी सम्मति के बिना विवाह नहीं हो सकता। विवाह में भी वह अपनी वैयक्तिकता को नहीं खोती। वह समाज के स्वतन्त्र सदस्य होने को नहीं नकारती है।"

कहने का अर्थ यह है कि मुस्लिम नारी अपने पैरों पर खड़ी है, किसी की कृपा की उसे अपेक्षा नहीं है। उसकी स्थिति अपेक्षाकृत पर्याप्त संतोषजनक है। पुरुषों के समान ही उसे अधिकार प्राप्त है।

राजनीति और समाज-व्यवहार

'कुरआन' में राजनीति तथा समाज-व्यवहार का सुन्दर विवेचन है। इस विवेचन का मूलोद्देश्य इस्लामी-क्षेत्रों में लोकप्रिय राज्य की स्थापना तथा आदर्श समाज की प्रतिष्ठा है। इस्लाम सर्वप्रभुता सम्पन्न शासन में विश्वास रखता है। उसके अनुसार शासक अल्लाह का प्रतिनिधि है। महर्षि मनु ने इन्द्र, वायु, यमराज, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठ लोकपालों के अंशों का राजा में समावेश माना है।

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।।

अध्याय 7, श्लोक संख्या 4

अर्थात् यह सभेश राजा (इन्द्र) विद्युत के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता, वायु के समान सबको प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जानने वाला, यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्तने वाला, सूर्य के समान न्याय, धर्म विद्या का प्रकाश, अंधकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला, वरुण अर्थात् बांधने वाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों का पूर्ण करने वाला, सभापति होवे।

और इसीलिए ही वह 'अभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा' (7/5) अपने तेज से सब जीवों को वशीभूत एवं पराजित कर देता है या सब भूतों से तेजस्वी होता है। ऐसी दशा में उसकी आज्ञा का पालन ही अल्लाह की इबादत है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी भी

परिस्थिति में उसका विरोध नहीं किया जा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर शासक के निरंकुश हो जाने पर लोगों को शासकों और शासन से मतभेद व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार है। ऐसे मतभेदों के अवसर पर यह आदेश है कि अन्तिम निर्णय जो लिया जाए वह अल्लाह और रसूल के क़ानून के आधार पर हो: हे ईमान वालो! अल्लाह का हुक्म मानो, और रसूल का हुक्म मानो, और उनका जो तुममें अधिकारी लोग हैं, फिर यदि तुम्हारे बीच किसी बारे में झगड़ा हो जाए, तो उसे अल्लाह और रसूल की ओर ले जाओ (4:59) अर्थात् अल्लाह की किताब (कुरआन) और रसूल के अनुसार फ़ैसला करो। इसी बात को बार-बार इन शब्दों में कहा गया है : तुम उनके बीच उस (हुक्म) के अनुसार फ़ैसला करो जो अल्लाह ने उतारा है (5:48)। फ़ैसला करते समय न्यायपरक दृष्टिकोण आवश्यक है। जब लोगों के बीच फ़ैसला करो तो न्यायपूर्वक फ़ैसला करो (4:58), किसी दल की शत्रुता तुम्हें इतना न भड़का दे कि तुम न्याय छोड़ दो, तुम्हें चाहिए कि तुम हर अवस्था में न्याय ही करो। अल्लाह न्याय करने की आज्ञा देता है। अन्याय में स्थित हुआ राजा पूर्वजों से प्राप्त राज्य को अपने कर्म से उसी प्रकार भ्रष्ट कर देता है, जैसे हवा बादलों को छिन्न-भिन्न कर देती है—

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः।।

विदुरनीति, अध्याय 2, श्लोक संख्या 27

ऐसी दशा में, स्थायी राज्य के लिए न्याय की आधार-शिला आवश्यक है।

शासक को मन्त्रिपरिषद् की सलाह मानकर ही शासन करना चाहिए। इससे न्याय बना रहेगा, प्रजा के हितों की रक्षा होती रहेगी तथा लोकप्रिय शासन की स्थापना हो सकेगी : और जिन (ईमानवाले

शासकों) ने अपने रब की सुनी और नमाज़ क़ायम की और जिनका काम आपस के मशविरे (सलाह) से होता है (42:38) वे ही दयालु (शासक) हैं, ईमान की कसौटी पर ख़रे उतरते हैं, 'डिक्टेटर' बनने की भावना उन्हें कभी भी विचलित नहीं कर पाती है। ऐसी दशा में, उन्हें आदेश है कि आप अपने (शासन-सम्बन्धी) कामों में मन्त्रणा कर लिया करें। मनुस्मृति में भी राजा को इसी प्रकार का आदेश दिया गया है—

तेषां स्वं स्वमतिप्राय मुपलभ्य पृथक्-पृथक्।
समस्तानां च कार्येषु विदध्याद्धितमात्मनः।।

अध्याय 7, श्लोक संख्या 57

अर्थात्, (राजा) सब कार्यों में उन मन्त्रियों के अभिप्राय को अलग-अलग जानकर जिसमें अपना हित हो, उसे करे। 'ऋग्वेद' ने भी व्यवस्था दी है कि राजा और प्रजा पुरुष मिलकर सुख-प्राप्ति और विज्ञान वृद्धिकारक कार्य करें तथा राज्य के समस्त प्राणियों को विद्या, स्वतन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें। इसके लिए विद्यार्य्य सभा, धर्मार्य्य सभा, राज्यार्य्यसभा इन तीन सभाओं की नियुक्ति आवश्यक बतलाई गई है।

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदासि।

ऋग्वेद मण्डल 3, सूक्त 38, मन्त्र 6

उक्त आदर्श ईश्वर के उपदेश के रूप में है, जिसका तात्पर्य केवल यही है कि शासक प्रबुद्ध प्रजाजनों से परामर्श लेकर राजकाज करे। वास्तव में, योग्य व्यक्तियों के परामर्श की अवहेलना न करनेवाला शासक, 'यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च' (विदुरनीति, 6/15) जिसकी मन्त्रणा को बहिरंग और अन्तरंग सभासद् तक नहीं जानते ऐसा सब ओर दृष्टि रखने वाला राजा, सीमोल्लंघन के अपराध से बचा रहता है, पग-पग पर सम्मान

मिलता है तथा संयम की कांति से निखरता हुआ वह चिरकाल तक ऐश्वर्य उपभोग करता है। 'अथर्ववेद' में ऐसे ही शासक को शत्रुजेता, राजाधिराज तथा सभापति होने के अत्यन्त योग्य बतलाया गया है—

इन्द्रोजयाति न परा जयाताअधिराजो राजसु राजयातै।
चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह।।

अथर्व वेद कांड 6 सू० 98 मन्त्र 1

अर्थात्, हे मनुष्यो! जो इस मनुष्य के समुदाय में परम ऐश्वर्य का कर्ता, शत्रु विजेता, अपराजेय, राजाओं में सर्वोपरि विराजमान, प्रकाशपूर्ण सभापति होने के अत्यन्त योग्य, प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभाव युक्त तथा सबका माननीय हो उसी को (विभिन्न सभाओं का) सभापति बनाओ। यह सभापति ही, मन्त्रि परिषद् का अध्यक्ष ही शासक है।

इस्लाम-धर्म लोकतंत्र में विश्वास रखता है, शासक को ईश्वर का प्रतिनिधि ठहराता है। इस मान्यता में वह आस्था व्यक्त करते हुए भी निरंकुशता का पूर्णतः विरोधी है। उसके अनुसार, राज्य का उद्देश्य अन्याय तथा अत्याचार समाप्त करना है। लोग इन्साफ़ पर क़ायम रहें, इस प्रकार की व्यवस्था करनी है, नेकी का हुक्म देना है, बुराइयों क़ो रोकना है तथा अल्लाह की निश्चित की हुई सीमाओं की हर सम्भव उपाय से रक्षा करना है। दीन (धर्म) क़ायम करना तथा आपस की फूट रोकना उसका प्रमुख कर्तव्य है। उसने तुम्हारे (राज्य के) लिए वही दीन निर्धारित किया है जिसकी ताकीद उसने नूह को की थी, और जिसकी वह्‌य (हे मुहम्मद) हमने तुम्हारी ओर की है, और जिसकी ताकीद हमने इबराहीम और मूसा और ईसा को की (उसी) दीन को क़ायम रखो, और उसमें फूट न डालो (42:13)। पूरे का पूरा दीन अल्लाह का हो जाए, राज्य के द्वारा ऐसी व्यवस्था किया जाना लोक-कल्याण के लिए आवश्यक है। इस्लाम ने

फ़ितना (उपद्रव) समाप्त करने के लिए कुफ़्र करने वालों से लड़ना न्यायसंगत बतलाया है। और (जिन लोगों ने कुफ़्र किया है) तुम उनसे लड़ो यहाँ तक कि फ़ितना (उपद्रव) बाक़ी न रहे, और दीन पूरा का पूरा अल्लाह के लिए हो जाए (8:39)। ज़कात और नमाज़ की उपयुक्त व्यवस्था कुशल शासन की पहचान है। इसलिए सत्ता पाने वालों से यह कहा गया है : वे लोग कि हम ज़मीन में जिन्हें अधिकार (राजसत्ता) प्रदान करें तो वे नमाज़ क़ायम रखें और ज़कात दें और भलाई का हुक्म दें और बुराई से रोकें (22:41)। संक्षेप में, इस्लाम-धर्म के अनुसार राजनीति कूटनीति नहीं है, धर्मनीति है। धर्म की नीति पर ही आधारित होने के कारण ही 'कुरआन' में प्रजा के मूल अधिकारों की रक्षा पर विशेष बल दिया गया है। किसी को हक़ के बिना क़त्ल करना पाप है। (17:33), नाजायज तरीक़ों से दूसरों के माल खाना गर्हित है (2:128; 4:29), किसी की खिल्ली उड़ाना, ऐब लगाना, बुरे नाम रखना, पीठ पीछे बुरा कहना, अधर्माचरण है (49:11-12)। दूसरे के घर में बिना आज्ञा प्रवेश करना तथा लोगों के भेद टटोलना अनुचित है। (24:27, 49:12) आदि विभिन्न आदेशों के पीछे प्राण-रक्षा, व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा, स्वाभिमान रक्षा, निजी जीवन रक्षा आदि अधिकारों की सुरक्षा की ही घोषणा है। धर्म के मामले में 'कुरआन' के अनुसार ज़बर्दस्ती निन्दनीय है, क्योंकि दीन का ताल्लुक मौलाना अबुल क़लाम आजाद के शब्दों में दिल के एतिक़ाद (विश्वास) से है। ज़ब्रोतशद्दुद (हिंसा) से एतिक़ाद पैदा नहीं किया जा सकता। इसलिए किसी को मजबूर करके मुसलमान बनाना ठीक नहीं। धर्म के मामले में 'ज़ब्र' सबसे बड़ा पाप है : 'लाइकराह फ़िद्दीन' अर्थात् दीन (धर्म) के बारे में कोई ज़बर्दस्ती नहीं (2:256) ऐसी दशा में क्या तू लोगों को मजबूर करेगा कि वे ईमानवाले (मुसलमान) हो जाएँ (10:99)। विचार एवं विश्वास की इस स्वतन्त्रता के साथ ही, दूसरों के उपास्यों को बुरा न कहने के

आदेश के द्वारा धर्मनिरपेक्षता पर इन शब्दों में बल दिया गया है : हे (ईमान वालो) अल्लाह के सिवाये जिन्हें पुकारते हैं, तुम लोग उन्हें गाली न दो (6:108)। वास्तव में, परधर्म सहिष्णुता से बढ़कर और कोई गुण नहीं है। इसलिए, उस शत्रु को भी जो हमारे धर्म को नहीं मानता है, न्यायोचित भाग देना ही उचित है–

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं,
सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः।
न देवानां नापि च मानुषाणां,
भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र।।

विदुरनीति, अध्याय 1, श्लोक संख्या 120

अर्थात्, हे भाई, महाराज धृतराष्ट्र! उन्हें उनका न्यायोचित राज्य-भाग देकर पुत्रों के साथ आनन्द भोगिये। नरेन्द्र! ऐसा करने पर आप देवता तथा मनुष्यों की टीका-टिप्पणी के विषय नहीं रह जाएंगे।

'कुरआन' में, वैदेशिक नीति के तत्व भी सहज संलक्ष्य हैं। सन्धिप्रस्ताव स्वीकार कर लेना उपयुक्त है (8:61)। सन्धि करने के बाद अपनी ओर से उसे तोड़ने की आज्ञा इस्लाम-धर्म नहीं देता है। उसके अनुसार तो जब तक दूसरा पक्ष विमुख न हो जाए तब तक उस पर डटे रहना ही श्रेयस्कर है (9:4; 9:7)। सन्धि का समझौता हो जाने के बाद गै़र-मुस्लिम राज्यों की व्यवस्था में हस्तक्षेप सर्वथा अनुचित है। यहां तक कि उस राज्य में रहने वाले मुसलमानों की सहायता भी नहीं की जानी चाहिए : और जो ईमान ले आए, परन्तु हिजरत नहीं कि वे यदि दीन के मामले में तुम से मदद चाहें तो (उनकी) मदद करनी तुम्हारे लिए आवश्यक है, परन्तु किसी ऐसे गिरोह के मुक़ाबले में नहीं जिससे तुम्हारी सन्धि है (8:72)। समझौते के बाद यदि कोई जाति धोखा देती है तो सन्धि समाप्त करने के बाद ही किसी प्रकार की कार्यवाही की जानी चाहिए (8:58)। शत्रु के साथ

मित्रता उपयुक्त नहीं है और न उसके ही साथ जो दुश्मन की मदद कर रहा है। (60:9)। बदला लेने की नौबत आने पर उतना ही बदला लेना चाहिए जितना उसने सताया है (16:126), उससे अधिक ज़्यादाती ख़राब है (2:194)।

इस क्रम में कहा गया है कि जो लोग तुमसे युद्ध करते हैं, उनसे युद्ध करो। यह नहीं कहा गया है कि जहाँ कहीं किसी इस्लाम के न मानने वाले पाओ, अकारण ही केवल इस्लाम के न मानने के कारण उसे मार डालो। ईश्वर ज़्यादती पसन्द नहीं करता। इसलिए, शत्रु जब भी युद्ध से रुक जाए, तुम भी रुक जाओ शस्त्र हीन शत्रु, जो लड़ना नहीं चाहता और न नुक़सान ही पहुंचाना चाहता है, अबाध्य उसके साथ भलाई का व्यवहार ही प्रशंसनीय है : जिन लोगों ने तुमसे दीन के बारे में युद्ध नहीं किया और न तुम्हें घरों से निकाला, अल्लाह तुम्हें उन पर एहसान करने और उनके साथ इन्साफ़ करने से नहीं रोकता है (60:8)। ज़्यादती करने वाले को दण्ड आवश्यक है। जुल्म का बदला लेना न्याय संगत होने के कारण ही 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' अथवा 'मायाचारो मायया वर्तितव्य' : (विदुरनीति, 5/7) का आदेश दिया गया है : बुराई का बदला उसी की जैसी बुराई है, और जो अपने ऊपर जुल्म किए जाने के बाद बदला ले ले तो ऐसे लोगों के विरुद्ध (उलाहना की) कोई राह नहीं (42:40-41)। उसे तो सदेह स्वर्ग ही प्राप्त हो जाता है, जो अन्याय के विरोध में संग्राम करते हुए प्राण त्यागता है। योगयुक्त सन्यासी के समान ही उसकी गति बतलाई गई है–

द्वाविमौ पुरुष व्याघ्रसूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिब्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः।।

– विदुरनीति, अध्याय 1, श्लोक संख्या 66

अर्थात्, ये दो प्रकार के पुरुष सूर्यमण्डल को भेद कर ऊर्ध्वगति

को प्राप्त होते हैं—योगमुक्त सन्यासी तथा (अन्याय के विरोध में) संग्राम में लोहा लेते हुएं मारा गया योद्धा।

संक्षेप में, बयालीसवें सूरा की छत्तीसवीं से लेकर तैंतालीसवीं आयत तक में वर्णित धर्मनिष्ठा, विद्रोह-दमन, परामर्श में आस्था, अत्याचारियों के आगे न झुकना, बुराई का बुराई के अनुरूप ही बदला तथा शक्ति होते भी क्षमाकर देना आदि दस गुण उत्तम तथा श्रेष्ठ राजनीति के मूलाधार हैं।

इनमें क्षमा सबसे बड़ा गुण है। इससे विभिन्न विशेषताओं का आविर्भाव होता है। यदि बुराई का जवाब भलाई से दिया जाए तो बुराई करने वाले पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वास्तव में प्रतिरोध की शक्ति होते हुए भी, सर्वविदित समर्थ होते हुए भी किसी को क्षमाकर देना बड़े साहस का काम है : और जो सब्र करे और क्षमाकर दे तो निश्चय ही यह बड़े साहस के कामें में से है (42:43)। इसीलिए ही, 'शक्तानां भूषणं क्षमा'(विदुरनीति 1/54) क्षमा को शक्तिशाली मनुष्यों का भूषण माना गया है, 'गुणवत्तां बलं' (विदुरनीति 7/69)।

गुणवानों का बल बतलाया गया तथा संसार को वश में करने वाली शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। शान्ति रूपी तलवार के सम्मुख दुष्ट तक नत हो जाते हैं।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किन साध्यते।
शान्तिखड्ग करे यस्य किं करिष्यतिदुर्जनः।।

— विदुरनीति, अध्याय 1, श्लोक संख्या 55

अर्थात्, इस जगत में क्षमा वशीकरण रूप है। भला क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता? जिस के हाथ में शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे? उल्टे वे सारा विरोध भूलकर क्षमाशील शासक की भाषा में ही बोलने लगेंगे। इसी विचारधारा के बल पर

राजनीति, धर्मनीति का रूप धारण कर लेती है।

बाह्य शत्रुओं के साथ ही आन्तरिक शत्रुओं का उन्मूलन भी आवश्यक है। 'कुरआन' में काफ़िरों तथा मुनाफ़िक़ों को ऐसे ही शत्रु बतलाया गया है। इनकी दोरुख़ी नीति होती है। सामने पड़ने पर ये मुंह देखी बातें करते हैं, पीठ पीछे विरोध की योजनाएँ तैयार करते हैं झूठी ख़बरें फैलाते हैं और इधर-उधर की लगाते रहते हैं। इनकी क़समें भी विश्वास के योग्य नहीं हैं। झूठी क़समें खा-खाकर अपने ईमान का यक़ीन दिलाने वाले इन लोगों से बिगाड़ के अतिरिक्त और कोई आशा नहीं है। अतएव अपनी हरकतों से अगर ये बाज़ न आए तो इनसे लड़ना धर्म का कार्य है। इन पर सख़्ती की ही जानी चाहिए : हे नबी! काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों से जिहाद करो और उनके साथ सख़्ती से पेश आओ (9:73; 33:60-61)। इनकी स्त्रियों पर भी दया उचित नहीं है। कारण मुनाफ़िक़ मर्द और मुनाफ़िक़ औरतें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं : मुनाफ़िक़ पुरुष और मुनाफ़िक़ औरतें सब परस्पर सज़ाति हैं (9:67)। अतएव प्रत्येक शासक का कल्याण इनसे सतर्क रहने में ही है। स्थायी शासन के लिए इनका उन्मूलन अनिवार्य है। महर्षि मनु ने भी ऐसे विरोधी व्यक्तियों का दमन संगत बतलाया है। उन्हें साम, दाम, दण्ड, भेद, किसी भी प्रकार से वश में किया जाना श्रेयस्कर है—

> **एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।**
> **तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।।**
> **यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।**
> **दण्डेनैव प्रसह्यैतांञ्छनकैवशमानयेत्।।**

— मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक संख्या 107-108

अर्थात्, विजय की इच्छा रखने वाले राजा का यदि कोई विरोधी हो जाए तो उसे साम आदि उपायों से शान्त करे। इनके असफल होने

पर, साम दाम, भेद—इन तीन उपायों से विरोध न छोड़ने पर राजा का कर्त्तव्य है कि वह बल प्रयोग करे तथा दण्ड से उसे बश में करे।

कर-निर्धारण की दिशा में भी शासक को ज़्यादती नहीं करनी चाहिए। 'कुरआन' ने आदेश दिया है कि राजा प्रजा से उतना ही धन ले जितना की राज्य की सुचारू व्यवस्था के लिए आवश्यक है। जैसे भौंरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही मधु का आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी, प्रजा जनों को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले। महात्मा विदुर के अनुसार भी शासक माली की भांति प्रजा की रक्षा करते हुए कर ले, कोयला बनाने वाले की तरह जड़ न काटे—

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथांगारकारकः।।

— विदुरनीति, अध्याय 2, श्लोक संख्या 18

अर्थात्, जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा भी प्रजा को सुरक्षित रखते हुए उससे कर ले। कोयला बनाने वाले की तरह जड़ काटना किसी भी दशा में ठीक नहीं। दण्डनीय व्यक्ति को दण्ड दिया जाना भी आवश्यक है। कुरआन के अनुसार हाथ की सज़ा हाथ, पैर की सज़ा पैर, आंख की सज़ा आंख, कान की सज़ा कान है। यदि कोई किसी का अंग-भंग करता है तो उसको अंग-भंग का दण्ड दिया जाना ही न्याय-संगत है। मनु ने भी दण्ड-पारुष्य का निर्णय करते हुए इसी प्रकार की दण्ड-व्याख्या उपयुक्त बतलायी है। उनकी आज्ञा है कि अपराधी जिस अंग से किसी को ताड़ना करे उसके उसी अंग को भंग कर देना श्रेयस्कर है। हाथ से मारने पर हाथ, पैर से ठुकराने पर पैर कटवा लेना ही न्याय संगत है—

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाक्षिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहर-कोपात्पादच्छेनमर्हति।।

— मनुस्मृति, 8/280

अर्थात् कोई यदि किसी को हाथ से मारे तो हाथ, अगर पैर से ठुकराये तो पैर को भंग कर देना चाहिए। किन्तु धर्मशास्त्र के अनुसार शारीरिक दण्ड दिए जाने से पूर्व ये उपचार आवश्यक है–

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीय धर्मदण्डं तु वधदण्डमतः परम्।।

– मनुस्मृति, अध्याय 8, श्लोक संख्या 129

अर्थात्, राजा को पहली बार वाक्य से डराकर दण्ड देना चाहिए, दूसरी बार धिक्कार से, तीसरी बार जुर्माना सर्वस्व हरण करके, चौथी बार शारीरिक दण्ड देना चाहिए। शारीरिक दण्ड से भी यदि सुधार नहीं होता है तो उक्त चारों प्रकार के दण्ड एक साथ ही उसे देने चाहिए। 'कुरआन' में ज़िना (व्यभिचार) की सज़ा कोड़े लगाना निर्धारित किया गया है, उसके अनुसार अल्लाह का अज़ाब सबसे बड़ा दण्ड है। अशुभ कार्य करने वाले इस दण्ड से किसी भी दशा से नहीं बच सकते हैं।

राजनीति-सम्बन्धी उक्त विवेचन के निष्कर्ष के रूप में सैयद अमीर अली की निम्नलिखित पंक्तियां प्रस्तुत की जा सकती हैं–

"Islam gave to the people a code which, however archaic in its simplicity, was capable of the greatest development in accordance with the progress of material civilisation. It conferred on the State a flexible constitution, based on a just appreciation of human rights and human duty. It limited taxation, it made man equal in the eye of law, it conscecrated the principles of self-government. It

established a control over the sovereign power by rendering the executive authority subordinate to the law'—a 'Law based upon religious sanction and moral obligation."

"इस्लाम ने लोगों को एक संहिता प्रदान की है जो यद्यपि अपनी सरलता और सहजता के बावजूद अत्यन्त प्राचीन है। यह संहिता आज की भौतिक सभ्यता की प्रगति को देखते हुए उससे कहीं अधिक आगे है। यह राज्य को ऐसा लचीला संविधान देती है, जो मानवाधिकारों और मानव-कर्त्तव्य के उचित मूल्यांकन पर आधारित है। यह सीमित करारोपण करती है, यह वैधानिक रूप से मानव को समानता प्रदान करती है। यह स्व-शासन के सिद्धांत देती है। यह शासनाधिकारी को क़ानून के अधीन करके शासन सत्ता पर नियन्त्रण स्थापित करती है-- यह एक क़ानून है जो धार्मिक आदेशों और नैतिक दायित्व पर आधारित है।"

— दि स्प्रिट ऑफ़ इस्लाम, पृष्ठ संख्या 277

इस प्रकार समता के सिद्धान्त पर आधारित जनकल्याणकारी राज्य की परिकल्पना 'क़ुरआन' की सबसे बड़ी देन है।

राजनीति के साथ ही समाज-व्यवहार का भी 'क़ुरआन' में सुन्दर वर्णन है। यह वर्णन समाज के उन्नयन में सहायक है। इस्लाम-धर्म के अनुसार सदाचरण सामाजिक सुव्यवस्था का मूल है। इस क्रम में कहा गया है कि व्यर्थ रक्तपात न करो, जिसकी हत्या अल्लाह ने निषिद्ध ठहरा दी है, उसे मत मारो, लोगों को घर से बेघर न बनाओ (2:84), अल्लाह को दिए हुए वचनों को भंग न करो, निस्संदेह वचन-निर्वाह तथा प्रतिज्ञा पालन के सम्बन्ध में ईश्वर के सम्मुख तुम से पूछताछ होगी (2:27), भलाई करके एहसान न धरो दिखावे से बचो (2:264), बेईमानी से दूसरों के माल न खाओ (4:29)

, गर्व न करो अल्लाह ऐसे लोगों को पसन्द नहीं करता (4:36-37) हृदय की संकीर्णता से बचो (4:128), शराब और जुआ गन्दे शैतानी काम हैं, इसलिए (ऐ ईश्वर पर विश्वास रखने वालो!) इनसे बचो, ताकि कल्याण पाओ (5:90)। हिन्दू ग्रन्थ में कुछ ऐसी ही बात है—मादक पदार्थ बुद्धि का नाशकर देते हैं, 'बुद्धि' लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते' (शार्गधर, अ० 4, श्लोक 21)। इसलिए ऐसी मदकारी वस्तुओं का परित्याग करो।

कुरआन में है—गन्दी बातों के करीब न जाओ—निर्लज्जता और बुराई के जितने काम हैं उन सबकी ईश्वर ने मनाही कर दी है—सन्तान को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो (6:152;17:31), कोई वादा करके न तोड़ो (16:91) अपव्यय मत करो (17:27), ज़िना (व्यभिचार) के क़रीब भी न फटको क्योंकि परस्त्रीगमन निर्लज्जता और कुपथ है (17:32), नाप-तौल में कमी न करो (17:35), पृथ्वी पर अकड़ते हुए न चलो—इस प्रकार तू न पृथ्वी को फाड़ डालेगा और न बढ़कर पर्वतों तक ही पहुँच जाएगा (17:37) झूठी बातों से बचो। (22:30), ईमानवालियों पर आरोप न लगाओ (24:23), बिना आज्ञा दूसरों के घरों में न घुसो (24:27-29), न फ़ुज़ूल ख़र्ची करो न कंजूसी, बीच की चाल चलो (25:67) अपराधियों के सहायक न बनो पुण्य और संयम के जो काम हैं उनमें सबको सहायता दो और अत्याचार के जो काम हैं, उनमें किसी की सहायता न करो और अल्लाह से डरते रहो, निस्संदेह वह बहुत कठोर दण्ड देने वाला है (28:17) लोगों से गाल फुलाकर बात न करो (31:18), किसी की खिल्ली मत उड़ाओ, ऐब न लगाओ और बुरे नाम न रखो (49:11), पीठ पीछे किसी को बुरा न कहो, यह मुर्दा भाई के मांस खाने के बराबर है (49:12:102:1), बदले की उम्मीद पर एहसान न धरो, निस्वार्थ भाव से सेवा करो (74:6), खाओ और पियो और सीमा से न बढ़ो, निस्संदेह अल्लाह सीमा से बढ़ने वालों को पसन्द नहीं करता, ईश्वर

पर विश्वास रखने वालो सूद-दर-सूद न खाओ, स्त्रियों के साथ सुरुचिपूर्ण व्यवहार करो, यतीमों पर क्रोध न करो, मांगने वालों को न झिड़को, कुटुम्बियों का, समाज के निर्धनों का हक़ न मारो (93:9-10) आदि विभिन्न निषेधों के माध्यम से व्यक्ति के आचरण को सुधारने का प्रयत्न किया गया है। इन निषेधों के अतिरिक्त कुछ विधि भी वर्णित हैं इनके अन्तर्गत माता, पिता तथा नातेदारों से अच्छा व्यवहार करने की विशेष रूप से संस्तुति है। इस सिलसिले में कई स्थानों पर कहा गया है कि माता, पिता और नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करो (2:83, 4:36, 6:151), उन पर अपने माल ख़र्च करो (2:177:2:215) उन्हें 'उफ़' तक न कहो 'तेरे रब ने फ़ैसला दिया है कि उसके सिवा किसी की इबादत न करो, माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करो, यदि उनमें से एक या दोनों तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जाएं तो उन्हें 'उफ़' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि इस तरह बोलो जो मर्यादित हो और उनके लिए दया से नम्रता की भुजा झुकाए रखो और कहो : रब! जिस तरह इन्होंने बचपन में मेरा पालन-पोषण किया है, तू भी इन पर दया कर (17:23-24)।

इन आयतों में 'मातृदेवो भव, पितृ देवो भव' (तैत्तिरीयोपनिषद्–शिक्षावल्ली–11) की सुन्दर शिक्षा है। सच्चाई पर डटे रहना भी एक आवश्यक गुण है। व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में सत्य-मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि 'सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव' (विदुरनीति, 1/52) सत्य ही सागर में नौका के सदृश स्वर्ग का सोपान है। इसलिए अल्लाह के रास्ते में आनेवाली कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना करना, असत्य के आगे हथियार न डालना ही अभीष्ट है (2:146), यही पौरुष का लक्षण भी है। अपना मामला होने पर भी या माता-पिता अथवा नातेदारों से सम्बन्धित होने पर भी सच्चाई पर जमे रहने का आदेश देते हुए कहा गया है : अल्लाह पर विश्वास रखने वालो अल्लाह की

आज्ञापालन के लिए सत्य की गवाही देकर न्याय के संस्थापक बनो, चाहे तुम्हारे इस न्याय और इस गवाही का प्रभाव स्वयं तुम पर, तुम्हारे माता-पिता पर और सम्बन्धियों पर पड़ता हो, तुम्हें जिस पर गवाही देनी पड़े वह धनी हो या निर्धन, अल्लाह (तुम्हारी अपेक्षा) उन दोनों से अधिक निकट है, सो तुम न्याय करने में (अपनी तुच्छ) इच्छाओं का पालन न करो, यदि तुम लगी-लिपटी बातें कहोगे या (सच्ची बात कहने से) कतराओगे, तो (जान रखो कि) जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह उसकी ख़बर रखने वाला है (4:135)। ऐसी दशा में न्यायपूर्ण व्यवहार ही अपेक्षित है 'तुला' का सीमोल्लंघन करना ठीक नहीं (55:8)। हर भलाई की ओर दौड़ना और उसे अपनाना ईमानवालों की पहचान है। वे बुराई को भलाई से दूर करते हैं। इससे बड़ी-से-बड़ी शत्रुता समाप्त हो जाती है और यह बात केवल उसको प्राप्त होती है, जिसने सब किया और यह बात केवल उसको प्राप्त होती है जो बड़ा भाग्यवान होता है (41:35)। वास्तव में अल्लाह जिन्हें साहस तथा धैर्य प्रदान करता है, वे ही बुराई का जवाब भलाई से दे सकते हैं। ऐसे भाग्यवान लोग संयम तथा पाक दामनी को कभी भी हाथ से नहीं जाने देते हैं, क्रोध आने पर क्षमाकर देते हैं। जो बिना रोग के उत्पन्न, कड़वा, सिर में दर्द पैदा करने वाला, पाप से सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनों द्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन पी नहीं सकते—ऐसे क्रोध को शान्ति की उपलब्धि के लिए पी जाना ही श्रेयस्कर है—

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसंतो,
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।।

— (विदुरनीति, अध्याय 4, श्लोक संख्या 68)

को प्राप्त होते हैं—योगमुक्त सन्यासी तथा (अन्याय के विरोध में) संग्राम में लोहा लेते हुएं मारा गया योद्धा।

संक्षेप में, बयालीसवें सूरा की छत्तीसवीं से लेकर तैंतालीसवीं आयत तक में वर्णित धर्मनिष्ठा, विद्रोह-दमन, परामर्श में आस्था, अत्याचारियों के आगे न झुकना, बुराई का बुराई के अनुरूप ही बदला तथा शक्ति होते भी क्षमाकर देना आदि दस गुण उत्तम तथा श्रेष्ठ राजनीति के मूलाधार हैं।

इनमें क्षमा सबसे बड़ा गुण है। इससे विभिन्न विशेषताओं का आविर्भाव होता है। यदि बुराई का जवाब भलाई से दिया जाए तो बुराई करने वाले पर इसका प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। वास्तव में प्रतिरोध की शक्ति होते हुए भी, सर्वविदित समर्थ होते हुए भी किसी को क्षमाकर देना बड़े साहस का काम है : और जो सब्र करे और क्षमाकर दे तो निश्चय ही यह बड़े साहस के कामें में से है (42:43)। इसीलिए ही, 'शक्तानां भूषणं क्षमा'(विदुरनीति 1/54) क्षमा को शक्तिशाली मनुष्यों का भूषण माना गया है, 'गुणवत्तां बलं' (विदुरनीति 7/69)।

गुणवानों का बल बतलाया गया तथा संसार को वश में करने वाली शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। शान्ति रूपी तलवार के सम्मुख दुष्ट तक नत हो जाते हैं।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किन साध्यते।
शान्तिखड्ग करे यस्य किं करिष्यतिदुर्जनः।।

— विदुरनीति, अध्याय 1, श्लोक संख्या 55

अर्थात्, इस जगत में क्षमा वशीकरण रूप है। भला क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता? जिस के हाथ में शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे? उल्टे वे सारा विरोध भूलकर क्षमाशील शासक की भाषा में ही बोलने लगेंगे। इसी विचारधारा के बल पर

राजनीति, धर्मनीति का रूप धारण कर लेती है।

वाह्य शत्रुओं के साथ ही आन्तरिक शत्रुओं का उन्मूलन भी आवश्यक है। 'कुरआन' में काफ़िरों तथा मुनाफ़िक़ों को ऐसे ही शत्रु बतलाया गया है। इनकी दोरुख़ी नीति होती है। सामने पड़ने पर ये मुंह देखी बातें करते हैं, पीठ पीछे विरोध की योजनाएँ तैयार करते हैं, झूठी ख़बरें फैलाते हैं और इधर-उधर की लगाते रहते हैं। इनकी क़समें भी विश्वास के योग्य नहीं हैं। झूठी क़समें खा-खाकर अपने ईमान का यक़ीन दिलाने वाले इन लोगों से बिगाड़ के अतिरिक्त और कोई आशा नहीं है। अतएव अपनी हरकतों से अगर ये बाज़ न आएं तो इनसे लड़ना धर्म का कार्य है।इन पर सख़्ती की ही जानी चाहिए : हे नबी! काफ़िरों और मुनाफ़िक़ों से जिहाद करो और उनके साथ सख़्ती से पेश आओ (9:73; 33:60-61)। इनकी स्त्रियों पर भी दया उचित नहीं है। कारण मुनाफ़िक़ मर्द और मुनाफ़िक़ औरतें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं : मुनाफ़िक़ पुरुष और मुनाफ़िक़ औरतें सब परस्पर सज़ाति हैं (9:67)। अतएव प्रत्येक शासक का कल्याण इनसे सतर्क रहने में ही है। स्थायी शासन के लिए इनका उन्मूलन अनिवार्य है। महर्षि मनु ने भी ऐसे विरोधी व्यक्तियों का दमन संगत बतलाया है। उन्हें साम, दाम, दण्ड, भेद, किसी भी प्रकार से वश में किया जाना श्रेयस्कर है—

एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।।
यदि ते तु न तिष्ठेयुरुपायैः प्रथमैस्त्रिभिः।
दण्डेनैव प्रसह्यैतांञ्छनकैवशमानयेत्।।

— मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक संख्या 107-108

अर्थात्, विजय की इच्छा रखने वाले राजा का यदि कोई विरोधी हो जाए तो उसे साम आदि उपायों से शान्त करे। इनके असफल होने

पर, साम दाम, भेद--इन तीन उपायों से विरोध न छोड़ने पर राजा का कर्त्तव्य है कि वह बल प्रयोग करे तथा दण्ड से उसे वश में करे।

कर-निर्धारण की दिशा में भी शासक को ज़्यादती नहीं करनी चाहिए। 'कुरआन' ने आदेश दिया है कि राजा प्रजा से उतना ही धन ले जितना की राज्य की सुचारू व्यवस्था के लिए आवश्यक है। जैसे भौंरा फूलों की रक्षा करता हुआ ही मधु का आस्वादन करता है, उसी प्रकार राजा भी, प्रजा जनों को कष्ट दिये बिना ही उनसे धन ले। महात्मा विदुर के अनुसार भी शासक माली की भांति प्रजा की रक्षा करते हुए कर ले, कोयला बनाने वाले की तरह जड़ न काटे--

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथांगारकारकः।।

— विदुरनीति, अध्याय 2, श्लोक संख्या 18

अर्थात्, जैसे माली बगीचे में एक-एक फूल तोड़ता है, उसकी जड़ नहीं काटता, उसी प्रकार राजा भी प्रजा को सुरक्षित रखते हुए उससे कर ले। कोयला बनाने वाले की तरह जड़ काटना किसी भी दशा में ठीक नहीं। दण्डनीय व्यक्ति को दण्ड दिया जाना भी आवश्यक है। कुरआन के अनुसार हाथ की सज़ा हाथ, पैर की सज़ा पैर, आंख की सज़ा आंख, कान की सज़ा कान है। यदि कोई किसी का अंग-भंग करता है तो उसको अंग-भंग का दण्ड दिया जाना ही न्याय-संगत है। मनु ने भी दण्ड-पारुष्य का निर्णय करते हुए इसी प्रकार की दण्ड-व्याख्या उपयुक्त बतलायी है। उनकी आज्ञा है कि अपराधी जिस अंग से किसी को ताड़ना करे उसके उसी अंग को भंग कर देना श्रेयस्कर है। हाथ से मारने पर हाथ, पैर से ठुकराने पर पैर कटवा लेना ही न्याय संगत है--

पाणिमुद्यम्य दण्डं वा पाणिच्छेदनमर्हति।
पादेन प्रहर-कोपात्पादच्छेनमर्हति।।

— मनुस्मृति, 8/280

अर्थात् कोई यदि किसी को हाथ से मारे तो हाथ, अगर पैर से ठुकराये तो पैर को भंग कर देना चाहिए। किन्तु धर्मशास्त्र के अनुसार शारीरिक दण्ड दिए जाने से पूर्व ये उपचार आवश्यक है—

वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्विग्दण्डं तदनन्तरम्।
तृतीय धर्मदण्डं तु वधदण्डमतः परम्।।

— मनुस्मृति, अध्याय 8, श्लोक संख्या 129

अर्थात्, राजा को पहली बार वाक्य से डराकर दण्ड देना चाहिए, दूसरी बार धिक्कार से, तीसरी बार जुर्माना सर्वस्व हरण करके, चौथी बार शारीरिक दण्ड देना चाहिए। शारीरिक दण्ड से भी यदि सुधार नहीं होता है तो उक्त चारों प्रकार के दण्ड एक साथ ही उसे देने चाहिए। 'कुरआन' में ज़िना (व्यभिचार) की सज़ा कोड़े लगाना निर्धारित किया गया है, उसके अनुसार अल्लाह का अज़ाब सबसे बड़ा दण्ड है। अशुभ कार्य करने वाले इस दण्ड से किसी भी दशा से नहीं बच सकते हैं।

राजनीति-सम्बन्धी उक्त विवेचन के निष्कर्ष के रूप में सैयद अमीर अली की निम्नलिखित पंक्तियां प्रस्तुत की जा सकती हैं—

"Islam gave to the people a code which, however archaic in its simplicity, was capable of the greatest development in accordance with the progress of material civilisation. It conferred on the State a flexible constitution, based on a just appreciation of human rights and human duty. It limited taxation, it made man equal in the eye of law, it conscecrated the principles of self-government. It

established a control over the sovereign power by rendering the executive authority subordinate to the law'—a Law based upon religious sanction and moral obligation."

"इस्लाम ने लोगों को एक संहिता प्रदान की है जो यद्यपि अपनी सरलता और सहजता के बावजूद अत्यन्त प्राचीन है। यह संहिता आज की भौतिक सभ्यता की प्रगति को देखते हुए उससे कहीं अधिक आगे है। यह राज्य को ऐसा लचीला संविधान देती है, जो मानवाधिकारों और मानव-कर्त्तव्य के उचित मूल्यांकन पर आधारित है। यह सीमित करारोपण करती है, यह वैधानिक रूप से मानव को समानता प्रदान करती है। यह स्व-शासन के सिद्धांत देती है। यह शासनाधिकारी को कानून के अधीन करके शासन सत्ता पर नियन्त्रण स्थापित करती है-- यह एक कानून है जो धार्मिक आदेशों और नैतिक दायित्व पर आधारित है।"

— दि स्प्रिट ऑफ़ इस्लाम, पृष्ठ संख्या 277

इस प्रकार समता के सिद्धान्त पर आधारित जनकल्याणकारी राज्य की परिकल्पना 'कुरआन' की सबसे बड़ी देन है।

राजनीति के साथ ही समाज-व्यवहार का भी 'कुरआन' में सुन्दर वर्णन है। यह वर्णन समाज के उन्नयन में सहायक है। इस्लाम-धर्म के अनुसार सदाचरण सामाजिक सुव्यवस्था का मूल है। इस क्रम में कहा गया है कि व्यर्थ रक्तपात न करो, जिसकी हत्या अल्लाह ने निषिद्ध ठहरा दी है, उसे मत मारो, लोगों को घर से बेघर न बनाओ (2:84), अल्लाह को दिए हुए वचनों को भंग न करो, निस्संदेह वचन-निर्वाह तथा प्रतिज्ञा पालन के सम्बन्ध में ईश्वर के सम्मुख तुम से पूछताछ होगी (2:27), भलाई करके एहसान न धरो दिखावे से बचो (2:264), बेईमानी से दूसरों के माल न खाओ (4:29)

, गर्व न करो अल्लाह ऐसे लोगों को पसन्द नहीं करता (4:36-37) हृदय की संकीर्णता से बचो (4:128), शराब और जुआ गन्दे शैतानी काम हैं, इसलिए (ऐ ईश्वर पर विश्वास रखने वालो!) इनसे बचो, ताकि कल्याण पाओ (5:90)। हिन्दू ग्रन्थ में कुछ ऐसी ही बात है— मादक पदार्थ बुद्धि का नाशकर देते हैं, 'बुद्धि' लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते' (शार्गधर, अ० 4, श्लोक 21)। इसलिए ऐसी मदकारी वस्तुओं का परित्याग करो।

कुरआन में है—गन्दी बातों के करीब न जाओ—निर्लज्जता और बुराई के जितने काम हैं उन सबकी ईश्वर ने मनाही कर दी है—सन्तान को ग़रीबी के डर से क़त्ल न करो (6:152;17:31), कोई वादा करके न तोड़ो (16:91) अपव्यय मत करो (17:27), ज़िना (व्यभिचार) के क़रीब भी न फटको क्योंकि परस्त्रीगमन निर्लज्जता और कुपथ है (17:32), नाप-तौल में कमी न करो (17:35), पृथ्वी पर अकड़ते हुए न चलो—इस प्रकार तू न पृथ्वी को फाड़ डालेगा और न बढ़कर पर्वतों तक ही पहुँच जाएगा (17:37) झूठी बातों से बचो। (22:30), ईमानवालियों पर आरोप न लगाओ (24:23), बिना आज्ञा दूसरों के घरों में न घुसो (24:27-29), न फ़ुज़ूल ख़र्ची करो न कंजूसी, बीच की चाल चलो (25:67) अपराधियों के सहायक न बनो पुण्य और संयम के जो काम हैं उनमें सबको सहायता दो और अत्याचार के जो काम हैं, उनमें किसी की सहायता न करो और अल्लाह से डरते रहो, निस्संदेह वह बहुत कठोर दण्ड देने वाला है (28:17) लोगों से गाल फुलाकर बात न करो (31:18), किसी की खिल्ली मत उड़ाओ, ऐब न लगाओ और बुरे नाम न रखो (49:11), पीठ पीछे किसी को बुरा न कहो, यह मुर्दा भाई के मांस खाने के बराबर है (49:12:102:1), बदले की उम्मीद पर एहसान न धरो, निस्वार्थ भाव से सेवा करो (74:6), खाओ और पियो और सीमा से न बढ़ो, निस्संदेह अल्लाह सीमा से बढ़ने वालों को पसन्द नहीं करता, ईश्वर

पर विश्वास रखने वालो सूद-दर-सूद न खाओ, स्त्रियों के साथ सुरुचिपूर्ण व्यवहार करो, यतीमों पर क्रोध न करो, मांगने वालों को न झिड़को, कुटुम्बियों का, समाज के निर्धनों का हक़ न मारो (93:9-10) आदि विभिन्न निषेधों के माध्यम से व्यक्ति के आचरण को सुधारने का प्रयत्न किया गया है। इन निषेधों के अतिरिक्त कुछ विधि भी वर्णित हैं इनके अन्तर्गत माता, पिता तथा नातेदारों से अच्छा व्यवहार करने की विशेष रूप से संस्तुति है। इस सिलसिले में कई स्थानों पर कहा गया है कि माता, पिता और नातेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करो (2:83, 4:36, 6:151), उन पर अपने माल खर्च करो (2:177:2:215) उन्हें 'उफ़' तक न कहो 'तेरे रब ने फ़ैसला दिया है कि उसके सिवा किसी की इबादत न करो, माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करो, यदि उनमें से एक या दोनों तुम्हारे सामने बुढ़ापे को पहुँच जाएं तो उन्हें 'उफ़' तक न कहो और न उन्हें झिड़को, बल्कि इस तरह बोलो जो मर्यादित हो और उनके लिए दया से नम्रता की भुजा झुकाए रखो और कहो : रब! जिस तरह इन्होंने बचपन में मेरा पालन-पोषण किया है, तू भी इन पर दया कर (17:23-24)।

इन आयतों में 'मातृदेवो भव, पितृ देवो भव' (तैत्तिरीयोपनिषद्—शिक्षावल्ली—11) की सुन्दर शिक्षा है। सच्चाई पर डटे रहना भी एक आवश्यक गुण है। व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में सत्य-मार्ग से विचलित नहीं होना चाहिए, क्योंकि 'सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव' (विदुरनीति, 1/52) सत्य ही सागर में नौका के सदृश स्वर्ग का सोपान है। इसलिए अल्लाह के रास्ते में आनेवाली कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना करना, असत्य के आगे हथियार न डालना ही अभीष्ट है (2:146), यही पौरुष का लक्षण भी है। अपना मामला होने पर भी या माता-पिता अथवा नातेदारों से सम्बन्धित होने पर भी सच्चाई पर जमे रहने का आदेश देते हुए कहा गया है : अल्लाह पर विश्वास रखने वालो अल्लाह की

आज्ञापालन के लिए सत्य की गवाही देकर न्याय के संस्थापक बनो, चाहे तुम्हारे इस न्याय और इस गवाही का प्रभाव स्वयं तुम पर, तुम्हारे माता-पिता पर और सम्बन्धियों पर पड़ता हो, तुम्हें जिस पर गवाही देनी पड़े वह धनी हो या निर्धन, अल्लाह (तुम्हारी अपेक्षा) उन दोनों से अधिक निकट है, सो तुम न्याय करने में (अपनी तुच्छ) इच्छाओं का पालन न करो, यदि तुम लगी-लिपटी बातें कहोगे या (सच्ची बात कहने से) कतराओगे, तो (जान रखो कि) जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह उसकी ख़बर रखने वाला है (4:135)। ऐसी दशा में न्यायपूर्ण व्यवहार ही अपेक्षित है 'तुला' का सीमोल्लंघन करना ठीक नहीं (55:8)। हर भलाई की ओर दौड़ना और उसे अपनाना ईमानवालों की पहचान है। वे बुराई को भलाई से दूर करते हैं। इससे बड़ी-से-बड़ी शत्रुता समाप्त हो जाती है और यह बात केवल उसको प्राप्त होती है, जिसने सब किया और यह बात केवल उसको प्राप्त होती है जो बड़ा भाग्यवान होता है (41:35)। वास्तव में अल्लाह जिन्हें साहस तथा धैर्य प्रदान करता है, वे ही बुराई का जवाब भलाई से दे सकते हैं। ऐसे भाग्यवान लोग संयम तथा पाक दामनी को कभी भी हाथ से नहीं जाने देते हैं, क्रोध आने पर क्षमाकर देते हैं। जो बिना रोग के उत्पन्न, कड़वा, सिर में दर्द पैदा करने वाला, पाप से सम्बद्ध, कठोर, तीखा और गरम है, जो सज्जनों द्वारा पान करने योग्य है और जिसे दुर्जन पी नहीं सकते—ऐसे क्रोध को शान्ति की उपलब्धि के लिए पी जाना ही श्रेयस्कर है—

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसंतो,
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य।।

— (विदुरनीति, अध्याय 4, श्लोक संख्या 68)

'कुरआन' चाहता है कि लोगों में ये विशिष्ट गुण पैदा हो, इसलिए, विनम्र बनने का आदेश देता हुआ कहता है : रहमान के (वास्तविक) बन्दे वही लोग हैं, जो ज़मीन पर नम्रतापूर्वक चलते हैं और जब अज्ञानी उनसे (अज्ञानता की) बातें करते हैं तो कहते : सलाम (है तुम पर) (25:63) अर्थात् वे गाली और झूठ का जवाब गाली और झूठ से नहीं देते हैं, बल्कि सलाम करके अलग हो जाते हैं, अज्ञानी और दुर्जन लोगों से उलझना उन्हें पसन्द नहीं : और जब उन्होंने (उसकी) बकवाद सुनी तो यह कहते हुए उससे किनारा खींच लिया कि हमारे कर्म हमारे लिए हैं और तुम्हारे कर्म तुम्हारे लिए, तुमको सलाम है, हम अज्ञानियों के ग्राहक नहीं (28:55)। इस प्रकार विनम्रता को सब गुणों के मूल रूप में स्वीकार किया गया है तथा 'अकीर्ति विनयो हन्ति' (विदुरनीति, 7/42) विनय भाव अपयश का नाश कर देता है—ऐसा कहा गया है। इसके अतिरिक्त यतीमों और मुहताजों के साथ अच्छा व्यवहार करना (2:83, 2:220), उनका माल उन्हें वापस कर देना (4:2), उनके धन की रक्षा करना (6:152, 17:34) भी धर्म का कार्य माना गया है। भूखे को खाना खिलाना तो सबसे बड़ा पुण्य का कार्य है। जो किसी की बुभुक्षा शान्त करते हैं, वे ईश्वर के कृपा-पात्र हैं : या भूख (अकाल) के दिनों में खाना खिला देना किसी नातेदार यतीम को, या धूल-धूसरित (दुर्दशाग्रस्त) मुहताज को, ये लोग हैं सौभाग्यशाली (9:13-18)। इसके विपरीत यतीमों को धक्के देना और फ़क़ीरों को खाना खिलाने पर लोगों को न उभारना बहुत बड़ा दुर्भाग्य माना गया है। ऐसे व्यक्ति को, जो न तो स्वयं ही दीन-दुखियों को खाना खिलाते हैं और न यही पसन्द करते हैं कि दूसरे लोग उन्हें खिलाएं, सम्बोधित करते हुए कहा गया है : वही तो है यतीमों को धक्के देता है, और मुहताज को खाना खिलाने को नहीं कहता (107:2-3)। वास्तव में ऐसे व्यक्ति के लिए सर्वत्र तबाही ही तबाही है। आचार्य चाणक्य के अनुसार भी, ऐसा व्यक्ति जो दूर से

आए हुए, मार्ग के श्रम से थके हुए तथा निरर्थक घर पर आए हुए व्यक्ति को बिना पूछे (खिलाए) खाता है, साक्षात् चाण्डाल है—

दूरागतं पथिश्रान्तं वृथा च गृहमागतम्।
अनर्चयित्वायो भुक्ते स वै चण्डाल उच्यते।।

— चाणक्यनीति, अध्याय 15, श्लोक संख्या 11

इसलिए अनाहूत अतिथि का भी सम्मान आवश्यक है।

सामाजिक-सुव्यवस्था के लिए आवश्यक इन निर्देशों के साथ ही 'कुरआन' में रहन-सहन के कुछ तरीकों का भी उल्लेख है। दूसरों के घरों में आज्ञा लेकर जाओ (24:27), सलाम का उत्तर अच्छे शब्दों में दो (4:86), फ़ज्र की नमाज़ से पहले, दोपहर के समय और इशा के बाद घर के अप्रौढ़ नौकर-चाकर और लड़के-लड़कियां भी इजाज़त लेकर आएं (24:58), जहाँ सामूहिक कार्य हो रहा हो, वहाँ से बिना आज्ञा मत जाओ (24:62), सभाओं में बैठकर गन्दे काम न करो (29:29), खाने के बाद व्यर्थ बैठकर गप्पें मत हांको (33:53), अपने प्रमुख से ऊँची आवाज़ में चिल्लाकर बातें मत करो (49:2) आदि नियम शिष्टाचार की कसौटी हैं। इनका पालन ऊँची सभ्यता का परिचायक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस्लाम-धर्म में 'कुरआन' के द्वारा दी गई व्यवस्था के अनुसार, राजनीति-धर्म का पुट लिए हुए है; समाज-व्यवहार सदाचरण पर आधारित है, नैतिक-शिक्षाएं व्यक्तित्व के विकास में सहायक हैं। सर्वत्र शील का निर्वाह 'कुरआन' की शिक्षा का रहस्य है। विदुरनीति के निम्नलिखित श्लोक को उक्त शिक्षा के मूल रूप में स्वीकार किया जा सकता है—

येषां हि वृतं व्यथते न योनि-
श्चित्त प्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टाः

त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि।।

— अध्याय 4, श्लोक संख्या 24

अर्थात् जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता है, जो अपने दोषों
माता-पिता को कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्नचित्त होकर धर्म का
।चरण करते हैं, तथा असत्य का परित्याग कर अपने कुल की
।शेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान कुल वाले हैं। व्यक्ति ऐसे
लवाले हों, ईमानवाले बनें यही 'कुरआन' का आदेश है।

--- समाप्त ---